प्रकाशक
प्रयाग पब्लिशिंग-हाउस
इलाहाबाद



मुद्रक
मन्नूप्रसाद पांडेय 'विशारद'
नागरी प्रेस, दारागंज,
प्रयाग

दो शब्द

मैथिल कोकिल महाकवि विद्यापति का नाम पदावली के कारण अमर है। यह वह पदावली है जिसके कारण विद्यापति के प्रति बंगालियों की ममता इतनी प्रबल हुई कि उन्हें अपना ही बना लिया और अब उन्हें छोड़ने के लिये तैयार नहीं है। बिहारियों के तो आप हई हैं। यही नहीं किन्तु हिन्दी जगत के लिये विद्यापति जी पियूषवर्षी जयदेव हैं। जयदेव के साथ जो समता विद्यापति की की जाती है वह इसी पदावली के कारण। संस्कृत में जयदेव और बँगला में चण्डीदास ने जो रस की धारा प्रवाहित की उसी धारा को हिन्दी में विद्यापति ने स्रोतस्विनी के रूप में प्रवाहित किया, जो कृष्ण भक्त कवियों द्वारा चिरकाल तक रस-दान पाती रही। प्रस्तुत संग्रह में उसी पदावली के सरस, सुमधुर तथा भाव-पूर्ण पदों का संकलन इस दृष्टि कोण से किया गया है कि पाठकों को विद्यापति के प्रत्येक ढंग के पदों का अनुभव और ज्ञान हो जाय। पदों को समझाने के लिये आवश्यक टिप्पणी भी दे दी गई है। विद्यापति सम्बन्धी संक्षिप्त किन्तु मार्मिक भूमिका भी दे दी गई है। आशा है काव्य-रसिकों को इसके द्वारा कुछ रसास्वादन हो सकेगा।।

ओंकारनाथ मिश्र

शारदं
गंज,

विद्यापति जी ने अपनी पदावली में शिवसिंह का नाम दिया है और बड़े सम्मान तथा काव्य रसिक के रूप में दि या है। मिथिला में जो जन श्रुति प्रसिद्ध है उसके आधार पर कहा जाता है कि राजा शिवसिंह ५० वर्ष की अवस्था में राजगद्दी पर बैठे थे। अपने युवराज काल में राज्य कार्य में अपने पिता की सहायता शिवसिंह जी बड़ी दक्षता के साथ किया करते थे। जिस समय ये राजगद्दी पर बैठे उसके कुछ ही दिन बाद इन्होंने 'बिसपी' नाम का गाँव विद्यापति को दान में दिया। विद्यापति के वंशधरों के पास वह दानपत्र अब भी विद्यमान है। दानपत्र का कुछ अंश यहाँ दिया जाता है—

ताम्रपत्र की प्रतिलिपि

स्वस्ति।, गजरथेत्यादि—समस्तप्रक्रिया विराजमान श्रीमद्रामेश्वरी वर लब्ध प्रसाद भवानी भव भक्ति भावनपरायण रूपनारायण महाराजाधिराजाधिराज श्रीमच्छिवसिंह देवपादाः समरविजयिनः जरइलतप्पायां बिसपी ग्राम वास्तव्यसकल लोकान् भूकर्षकांश्च समादिशन्ति। मतमस्तु भवतां ग्रामोऽयमस्माभिः स प्रक्रियाभिनव जयदेव महापण्डित ठक्कुर श्री विद्यापतिभ्यः शासनीकृत्य प्रदत्तोऽतो यूयमेतेषां वचनकरी भूयकर्षणादिकं कर्म करिष्यथेति ल० सं० २९३ श्रावण शुदि सप्तम्यां गुरौ।

श्लोकास्तु

अब्दे लक्ष्मणसेन . भूपतिमिते वह्निग्रहद्वयङ्किने
मासि श्रावण संज्ञके मुनितिथौ पक्षेऽवलक्षे गुरौ।
वाग्वत्याः सरितस्तटे गजरथे त्याख्याप्रसिद्धे पुरे
दित्सोत्साहसमृद्ध बाहु पुलकस्सभ्याय मध्येसभम्॥१॥
प्रज्ञावान् प्रचुरोर्व्वरं पृथुतराभोगन्नदीमातृकं
सारण्यं ससरोवरञ्च बिसपी नामानमासीमतः।
श्री विद्यापति शर्मणे सुकवये वाणी रसस्वादवि-
द्वीर श्री शिवसिंह देव नृपतिर्ग्रामं ददे शासनम्॥२॥

सन् ८०७, सं० १४५५, शाके १३२६ शुभमस्तु।

प्रसिद्ध है कि विद्यापति जी शिवसिंह जी से दो वर्ष बड़े थे। यदि यह ठीक है तो राज्यारोहण के समय विद्यापति जी की अवस्था ५२ वर्ष की थी। इसके अनुसार विद्यापति का जन्म लक्ष्मणाब्द २४१ सं० १४०७ वि० सन् १३५० ई० में होना सम्भव है। जन्म सम्वत् के विषय में तो यही अनुमान लगाया जाता है और यह अनुमान कुछ अंश तक बहुत ठीक भी प्रतीत होता है। मृत्यु सम्वत् के विषय में विद्यापति जी ने अपने पदों में कुछ संकेत किया है। राजा शिवसिंह जी का राज्याभिषेक ल० सं० २९३ में हुआ था। राज्य-वंश-परम्परा से पता चलता है कि शिवसिंह जी ने तीन वर्ष नौ मास राज्य किया था। ल० सं २९६ तक शिवसिंह राजा थे। इसके अनन्तर शिवसिंह की मृत्यु के ३० वर्ष बाद अर्थात् ल० सं० ३२८ में विद्यापति जी ने राजा को स्वप्न में देखा। राजा को बिलकुल मलिन कृष्ण वर्ण में देखा था। पुराणों के आधार पर ऐसा विश्वास किया जाता है कि जब स्वप्न में अपना कोई मृत प्रिय जन मलिन वेश में दिखाई पड़े तो अपनी मृत्यु निकट समझनी चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि विद्यापति की मृत्यु शिवसिंह की मृत्यु के ३२ वर्ष बाद हुई। इस स्वप्न क वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है:—

सपन देखल हम सिव सिंघ भूप।
बतिस बरस पर सामर रूप॥
बहुत देखल गुरुजन प्राचीन।
अब भेलहुँ हम आयु विहीन॥

× × ×

मृत्यु तिथि के विषय में यह प्रसिद्ध है—

विद्यापति, क आयु अवसान।
कातिक धवल त्रयोदसि जान॥

शिवसिंह के राज्यारोहण के अवसर पर विद्यापति ५२ वर्ष के थे यह पहिले कहा जा चुका है। तीन वर्ष नौ मास शिवसिंह ने राज्य किया और फिर मृत्यु हो गई। मृत्यु के ३२ वर्ष बाद विद्यापति ने स्वप्न देखा जो उनके जीवन का अवसान काल था। इस प्रकार ५२ वर्ष और ३ वर्ष में ३२ वर्ष जोड़ देने से ८७ वर्ष होता है। यदि स्वप्न के वर्ष दो वर्ष बाद भी मृत्यु हुई होगी तो विद्यापति का देहावसान ८९ या ९० वर्ष की अवस्था में हुआ होगा। इस प्रकार इनकी मृत्यु सं० १४९७ वि० या सन् १४४० ई० में हुई होगी।

ताम्रपत्र में 'विसपी' गाँव का नाम आया है। यही विसपी गाँव विद्यापति जी का निवास-स्थान था। यह गाँव दरभंगा मण्डल के अन्तर्गत कमतौल स्टेशन से दो कोस की दूरी पर स्थित है। यहाँ पर विश्वेश्वरी देवी जी का मंदिर है जिसे लोग विद्यापति जी की कुलदेवी बताते हैं।

विद्यापति जी मैथिल ब्राह्मण थे। मैथिलों में पंजी प्रथा है। इनकी कुलपरम्परा का वर्णन एक पुस्तक में लिखित रूप में विद्यमान रहता है। इसी को पंजी कहते हैं। विद्यापति के सभी पूर्वज मिथिला के राजा के दरबार में उच्चपद पर राज काज करते आये हैं। इनके प्रथम पूर्वज कर्मादित्य प्रसिद्ध राज-मंत्री थे। इनके पिता गणपति ठाकुर भी राज-मंत्री थे। गणपति ठाकुर जी प्रसिद्ध कवि और काव्य मर्मज्ञ थे। इनकी लिखी हुई 'गंगा भक्ति तरंगिणी' नाम की पुस्तक प्रसिद्ध है। ऐसे विद्वान् काव्य रसिक के पुत्र विद्यापति का इस प्रकार मर्मज्ञ कवि होना स्वाभाविक ही है। गणपति ठाकुर कपिलेश्वर महादेव जी की उपासना करते थे और प्रसिद्ध तो यह है कि उन्हीं महादेव की कृपा से इन्हें ऐसा पुत्र-रत्न प्राप्त हुआ था। अपने पिता जी के साथ ये राजा गणेश्वर के दरबार में आया जाया करते थे। जब गणेश्वर जी के बाद कीर्त्तिसिंह राजा हुए तो नियमित रूप से विद्यापति उनके दरबार में

आने जाने लगे। इन्ही कीर्तिसिंह की प्रशंसा में इन्होंने 'कीर्ति लता' और 'कीर्ति पताका' नाम की दो पुस्तकों का निर्माण किया। ऐसा प्रतीत होता है कि विद्यापति जी इनके दरबार में बहुत अधिक समय तक रहे होंगे। इसके अतिरिक्त अन्य कई राजाओं के आश्रय में ये रहे हैं। देवसिंह, भवसिंह कीर्तिसिंह आदि शिवसिंह के पूर्वज थे। इन सभी के शासन काल में विद्यापति जी दरबार में उचित सम्मान प्राप्त कर चुके थे। ऐसा प्रतीत होता है कि शिवसिंह जी ने इनका बहुत अधिक सम्मान किया। वे इन्हें अपना परम मित्र, सहचर, बन्धु, कवि तथा अपने दरबार का एक अमूल्य रत्न समझते थे। शिवसिंह स्वयं सहृदय काव्य मर्मज्ञ थे, इसीलिये विद्यापति की रचनाओं से प्रभावित हो कर उन्हें अपने हृदय में स्थान दिया था। शिवसिंह की रानी 'लखिमादेई' भी विदुषी और काव्य मर्मज्ञा थीं। विद्यापति ने जितने पदों की रचनायें की हैं प्रायः सभी में राजा शिवसिंह और रानी 'लखिमादेई' का नाम अवश्य है। ऐसा प्रसिद्ध है कि राजा और रानी की भणिता से युक्त पद राजा के रनिवास में गाये जाते थे। यदि रानी 'लखिमा देई' इतनी विदुषी और काव्य मर्मज्ञा न होतीं तो कोई कारण नहीं था कि विद्यापति उनका नाम पदों में देते। राजा शिवसिंह की अन्य भी कई रानियाँ थीं, परन्तु लखिमा देवी ही का नाम विद्यापति ने शिवसिंह के साथ जोड़ कर अपने पदों में दिया है, इस से प्रकट होता है कि लखिमा देवी शिवसिंह की पटरानी रही होंगी अथवा उन्हीं पर राजा का प्रगाढ़ प्रेम रहा होगा। साथ ही सब रानियों में वे ही अधिक विदुषी भी रही होंगी। ऐसे काव्य-रसिक आश्रय दाता राजा और रानी को पाकर विद्यापति जी ने अपना अन्तःकरण खोलकर कविता के रूप में उनके सामने रख दिया।

विद्यापति का भाषा-ज्ञान

विद्यापति जी ऐसे युग में हुए थे जब कि अपभ्रंश साहित्य का

अवसान हो चुका था और अपभ्रंश काव्य के स्थान पर डिंगल और अन्य देशी भाषा काव्यों ने अधिकार जमा लिया था। उस युग में कवियों का ध्यान देशी भाषाओं और बोलियों पर अधिक जा रहा था। विद्यापति जी कई भाषाओं के ज्ञाता थे और उन भाषाओं पर उनका पूर्ण अधिकार था। पूर्वजों की प्रथा के अनुसार वे संस्कृत भाषा और साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् तो थे ही इसके साथ ही साथ अपभ्रंश भाषा पर भी उनका पूर्ण अधिकार था। यद्यपि इनके समय में अपभ्रंश-भाषा-काव्य की रचना का प्रचार नहीं था, परन्तु फिर भी विद्यापति जी ने अपभ्रंश में रचना की है। इससे पता चलता है कि उनका अपभ्रंश-भाषा-ज्ञान कितना प्रौढ़ था। विद्यापति के दो सौ वर्ष पूर्व अपभ्रंश काव्य परम्परा समाप्त हो चुकी थी। ऐसी अप्रचलित और अव्यवहारिक भाषा का सहारा लेकर काव्य की रचना करना साधारण प्रतिभावान व्यक्ति का काम नहीं है। उस भाषा पर उनका इतना अधिकार था कि उसकी रचना और उसके मार्दव पर इन्हें गर्व था। स्वयं अपनी अपभ्रंश रचना की भाषा के विषय में विद्यापति ने कहा है:—

बाल चन्द विज्जावइ भासा। दुहुँ नहिं लग्गइ दुज्जन हासा॥
ओ परमेसर हरसिर सोहइ। ई णिच्चई नाअर मन मोहइ॥

इस भाषा को विद्यापति जी ने बहुत ही मधुर बताया है। अधिक मिठास के कारण ही उन्होंने इस 'अवहट्ठ' भाषा में उन्होंने रचना की है—

देसिल बअना सब जन मिट्ठा।
ते तैसन जम्पओ अवहट्ठा॥

परन्तु यह 'अवहट्ठ' या 'अपभ्रंश' भाषा इनकी साहित्यिक हुई है। उसमें उतनी स्वाभाविकता नहीं है जितनी अपभ्रंश काल की रचनाओं में है। फिर भी विद्यापति का अपभ्रंश भाषाज्ञान बहुत

ही प्रशंसनीय है। संस्कृत भाषा की इनकी रचनायें तो प्रसिद्ध ही हैं। उन्हीं से पता चल जाता है कि संस्कृत भाषा पर भी इनका कितना असाधारण अधिकार था। इन दोनों भाषाओं के अतिरिक्त इनको प्राकृत भाषाओं का भी अच्छा ज्ञान था। यद्यपि प्राकृत भाषा में इन्होंने रचनायें नहीं की हैं, परन्तु इनके अपभ्रंश काव्य के अध्ययन से पता चलता है कि ये प्राकृत भाषाओं को भी अच्छी तरह जानते थे। अपने समय की अपनी प्रान्तीय बोली का तो ऐसे स्वाभाविक रूप में इन्होंने प्रयोग किया है कि कोई अपढ़ भी उसे सुनकर उसकी सरलता और स्वाभाविकता का अनुभव कर सकता है। मैथिल होने के कारण 'मैथिली' भाषा पर भी इनका पूरा अधिकार था। इनके पदों की रचना मैथिली भाषा में ही हुई है। विद्यापति के समय में जो मैथिली भाषा बोली जाती थी उसका रूप आज मिथिला में प्रयुक्त नहीं होता। इसलिये उनकी मैथिली भाषा और आज कल की मैथिली में कुछ अन्तर है। अपने समय की मैथिली का जो प्रयोग विद्यापति जी ने किया है उसका भी सुसंस्कृत रूप ही अधिक ग्रहण किया है। यद्यपि गेय पदों की रचना में देशज शब्दों का भी प्रयोग अधिक हुआ है, परन्तु वे देशज शब्द भी अपने वास्तविक रूप से अधिक दूर नहीं गये हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि विद्यापति जी का तीन तीन भाषाओं पर सम न अधिकार था और उसका आश्रय लेकर उन्होंने सफलता के साथ रचनायें भी की हैं।

विद्यापति का शास्त्रीय ज्ञान

विद्यापति जी ऐसे कुल में उत्पन्न हुए थे जो शास्त्रीय पाण्डित्य में पारंगत था। अपने पूर्वजों की भाँति विद्यापति जी भी सभी शास्त्रों में पूर्ण निष्णात थे। पुराणों का अध्ययन उन्होंने बड़ी गम्भीरता के साथ किया था। अपने इस पुराण-ज्ञान का प्रयोग इन्होंने संस्कृत-ग्रन्थों में

अधिक किया है। इनकी एक हस्तलिखित पुस्तक 'श्रीमद्भागवत' इनके पुराण-ज्ञान के लिए पर्याप्त प्रमाण है। 'शैव सर्वस्वसार' नाम के ग्रन्थ को इन्होंने स्मृति-ग्रन्थ के रूप में लिखा है। दान वाक्यावली, गंगा वाक्यावली, दुर्गाभक्तितरंगिणी, वर्षकृत्य और गयापत्तलक आदि स्मृति-ग्रन्थ विद्यापति ही के लिखे हुए हैं जिनको देखने से उनके स्मृति-ज्ञान का भी पूरा पता चलता है।

विद्यापति जी नीति शास्त्र के भी अच्छे ज्ञाता थे। राजदरबार में रहने के कारण राजनीति का तो इनको पूरा ज्ञान था ही, परन्तु समाज-नीति, धर्मनीति और लोकनीति में भी आप दक्ष थे। 'विभागसार' नाम के ग्रन्थ में 'दाय-भाग' का अच्छा विवेचन न्याय-नीति के अनुसार किया गया है। विद्यापति जी 'शरीर-विज्ञान' एवं 'सामुद्रिक-शास्त्र' के भी अच्छे ज्ञाता थे। 'पुरुष-परीक्षा' ग्रन्थ में पुरुषों के लक्षणों और स्वभावों का वर्णन किया गया है। मानव-प्रकृति-निरीक्षण के साथ-साथ वे प्रकृति-निरीक्षण भी अच्छी तरह जानते थे। ऋतु वर्णन में इनका प्रकृति-निरीक्षण दर्शनीय है।

विद्यापति के पूर्वज दर्शन शास्त्र के अच्छे विद्वान थे। दर्शन शास्त्र पर इनके पूर्वजों ने ग्रन्थों का निर्माण भी किया है। इसके अनुसार विद्यापति जी भी दर्शन शास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे। परन्तु इनकी कवित्व-प्रतिभा ने इन्हें 'दर्शन' से मोड़ कर कविता की ओर अधिक प्रवृत्त कर दिया। प्रायः संस्कृत के विद्वान् भूगोल सम्बन्धी ज्ञान से शून्य रहते हैं। परन्तु विद्यापति जी संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् होने के साथ ही साथ भौगोलिक ज्ञान भी रखते थे। 'कीर्ति लता' और 'कीर्ति-पताका' से इनके भौगोलिक और ऐतिहासिक ज्ञान का पता चलता है। साहित्य-शास्त्र में तो विद्यापति जी पूर्ण दक्ष थे। इस विषय को इनकी कवित्व-शक्ति में देखिये।

विद्यापति की कवित्व शक्ति

कवित्व-प्रतिभा ईश्वर-प्रदत्त शक्ति है। जिसमें ईश्वर द्वारा दी

हुई यह शक्ति है वही प्रतिभावान् कवि बन सकता है और बनता है। अभ्यास करने से कोई उच्चकोटि का कवि नहीं हो सकता। अभ्यास से तो केवल कविता समझने की शक्ति आती है। बड़े बड़े जितने कवि हुए हैं वे सभी ईश्वर के यहाँ से प्रतिभा लेकर आये हैं। हाँ, उस प्रतिभा को जाग्रत करने के लिये कुछ साधनों की आवश्यकता पड़ती है, उन्हीं साधनों को मनुष्य संसार में आकर प्राप्त करता है और अपनी प्रतिभा को चमका कर संसार को आश्चर्य चकित कर देता है। कवि में विद्वत्ता के साथ-साथ भावुकता का भी होना अनिवार्य है। महाकवि विद्यापति ने शास्त्रीय ढंग से विद्या का अध्ययन तो किया ही था, परन्तु भावुकता भी उनमें भरी पड़ी थी। किसी भी दृश्य को देखकर हृदय का उमड़ पड़ना भावुकता का चिह्न है। विद्यापति के काव्यों के अध्ययन से पता चलता है कि वे बड़े ही भावुक थे। इन्होंने तीन प्रकार के काव्यों की रचना की है:—

१—आश्रित काव्य—इसके अन्तर्गत 'कीर्ति लता' और 'कीर्ति पताका' ग्रन्थों की गणना की जा सकती है। इसमें अपने आश्रय-दाताओं की कीर्ति का वर्णन है।

२—प्रकाण्ड पाण्डित्य पूर्ण काव्य—संस्कृत के प्रायः अधिकांश ग्रन्थ प्रकाण्ड पाण्डित्य की दृष्टि से ही लिखे हुए प्रतीत होते हैं। इन ग्रन्थों के अध्ययन से विद्यापति के अनेक शास्त्रों के पाण्डित्य का ज्ञान होता है।

३—जन साधारण काव्य—ऐसे काव्यों में हृदय से निकली भावनाओं का चित्रण किया गया है। पदावली की गणना इसी भाग में की जा सकती है।

यद्यपि इन तीनों प्रकार के काव्यों में इनकी कवित्व-शक्ति का दर्शन होता है, परन्तु वास्तविक रूप से कवित्व-छटा का अवलोकन जन-साधारण-काव्य में ही किया जा सकता है। जन-साधारण-काव्य

के अन्तर्गत इनके श्रृंगारिक पद और भक्ति-सम्बन्धी पद आते हैं। इन्हीं पदों में काव्य-छटा पूर्ण रूप से छलकी पड़ती है। विद्यापति की कवित्व-शक्ति का पता लगाने केलिये इनके सम्पूर्ण काव्य की आलोचना न करके केवल पदावली ही की आलोचना यदि कर दी जाय तो पर्याप्त होगा।

पदावली की रचना पद-शैली पर हुई है। हिन्दी साहित्य में इस ढंग की रचनायें विद्यापति के पूर्व नहीं के समान हैं। जो हैं भी वे केवल स्फुट पद के रूप में हैं, जिनका स्थायित्व साहित्य में नहीं है। केवल मौखिक रूप में यत्र-तत्र सुनी जाती हैं। विद्यापति जी ने गीत गोविन्द की गीत-पद्धति पर अपनी पदावली की रचना की है। संस्कृत साहित्य में गीतगोविन्द ही ऐसा ग्रन्थ है जो अपने ढंग का निराला है। बड़े ही मधुर पदों में ताल और स्वरों पर इसकी रचना हुई है। इसके एक-एक पद में रस लबालब भरा हुआ है। इसी गीत गोविन्द के कारण ही जयदेव 'पीयूष वर्ष' कहे जाते हैं। बंगाल में चण्डीदास जी ने भी इसी पद्धति पर रचना की है। इसी पद्धति का अवलम्बन विद्यापति जी ने भी किया है। राधा और कृष्ण की प्रेम मयी मूर्ति का चित्रण ही इस काव्य में प्रधान है। हमारे यहाँ साहित्य में राधा और कृष्ण प्रेम के प्रतीक माने गये हैं। इसीलिए संस्कृत साहित्य में भी इनकी माधुर्यमयी मूर्ति का ही चित्रण अधिक हुआ है। स्वयं श्रीमद्भागवतकार श्रीकृष्ण द्वैपायन 'व्यास' ने भी श्री कृष्ण को 'स्मरोमूर्तिमान्' कह कर व्यक्त किया है। राम-सीता तथा राधा-कृष्ण के ये प्रेममय गीत प्रत्येक हिन्दू समाज में मंगल के अवसर पर सदा गाये जाते हैं। प्रत्येक देश और प्रांत में केवल प्रकार में भिन्नता होगी। गाये ये सब जगह जाते हैं। सूर और मीरा के पद प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार मिथिला में विद्यापति के पद अधिक गाये जाते हैं। प्रेम सम्बन्धी पदों में श्रृंगार रस की प्रधानता है और भक्ति-सम्बन्धी पदों में शान्त रस है।

विद्यापति ने श्रृंगार रस के दोनों रूपों को लिया है और उनका विशद वर्णन किया है। श्रीकृष्ण और राधा के रूप सौंदर्य वर्णन में संयोग श्रृंगार का रूप दिखाई पड़ेगा और दूती, सखी शिक्षा अभिसार और विरह में विप्रलम्भ श्रृंगार का रूप देखने को मिलेगा। हिन्दी साहित्य में बहुत से कवियों ने श्रृंगार रस का समावेश अपने काव्यों में किया है। समस्त रीति काल तो श्रृंगारिक-काल ही कहलाता है। इनमें से कुछ ही कवि रसत्व तक पहुँचे हैं। अधिक भाव ही तक रह गये हैं। परन्तु विद्यापति जी की रचना में रसत्व का रूप सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। कविता में रस के सभी अंगों के समावेश से ही रस का पूर्ण परिपाक देखा जा सकता है। अनुभाव, विभाव, संचारी से पुष्ट स्थायी भाव ही रस कहलाता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि रसत्व तक पहुँचने के लिये कवि को अनुभाव, विभाव तथा सञ्चारी का उचित रीति से समावेश अपनी कविता में करना चाहिए। विद्यापति के पदों को पढ़िये और उन पदों में रस के सभी अंगों को ढूँढ़ने की चेष्टा कीजिये। इस संग्रह के चौथे पद में कवि ने वयः-संधि का वर्णन किया है। नायिका के रूप और उसकी दशा के चित्रण में कवि ने विभावों, अनुभावों तथा संचारियों का समावेश कितनी पटुता से किया है! इन्हीं सबसे पुष्ट 'रति' स्थायी का समावेश इस पद में हुआ है। विरह वर्णन में, जहाँ पर कवि ने विप्रलम्भ श्रृंगार का चित्र उपस्थित किया है, रस का पूर्ण परिपाक दिखाई पड़ता है। श्रृंगार के अतिरिक्त शान्त रस भी इनके भक्ति सम्बन्धी पदों में पूर्ण रूप से पाया जाता है। विद्यापति जी शिव जी के परम भक्त थे। उनकी भक्ति में तल्लीन होकर कभी कभी नाचने लगते थे और अपने शरीर की सुध-बुध तक भूल जाते थे। ऐसे पदों में तन्मयता अधिक पाई जाती है। इन्हीं पदों में शान्त रस का पूर्ण परिपाक हुआ है। आश्रित काव्यों में वीर रस का भी समावेश अच्छी प्रकार से किया गया है। कीर्तिलता और कीर्तिपताका में वीर रस का अच्छा परिपाक हुआ है।

विद्यापति जी की रचना में अलंकार-विधान भी बड़े ही सुन्दर ढंग से हुआ है। शब्दालंकारों में अनुप्रास तो सर्वत्र मिलता है, उसमें भी छेकानुप्रास का प्रयोग पदावली में अधिक हुआ है। अलंकार काव्य का गौण अंग है। इसीलिये प्रतिभा-सम्पन्न कवि अलंकारों के पीछे नहीं पड़ते। अलंकार स्वतः उनकी रचना में आ जाते हैं। यही कारण है कि उच्चकोटि के जितने भी भावुक कवि होंगे उनमें, अर्थालंकारों में जो प्रसिद्ध सादृश्य-मूलक अलंकार हैं, उन्हीं का प्रयोग अधिक पाया जाता है। बात यह है कि कवि वर्ण्य विषय की उत्कृष्टता को व्यक्त करने के लिये उसकी समता में किसी अपूर्व पदार्थ की कल्पना करता है। इसी कल्पना में उसकी प्रतिभा देखी जाती है। इसके लिये उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीप, व्यतिरेक आदि अलंकारों का सहारा लेना ही पड़ता है। सहारा नहीं लेना पड़ता, ये स्वतः उक्तियों में आ ही जाते हैं। विद्यापति जी की पदावली में रूपक उत्प्रेक्षा, उपमा, व्यतिरेक आदि अलंकारों का प्रयोग अधिकता से हुआ है। व्यतिरेक और अनन्वय अलंकार का समावेश एक ही स्थल पर देखिये :—

जौं श्रीखण्ड-सौरभ अति दुर्लभ तौं पुनि काठ कठोर।
जौं जगदीस निशाकर तौ पुनि एक ही पच्छ उजोर॥
मनि-समान औरो नहिं दोसर तनिकर पाथर नामे।
तोहर सरिस एक तोहें माधव मन होइछ अनुमाने॥

व्यतिरेक अलंकार—

कबरी-भय चामरि गिरि कन्दर
मुखभय चाँद अकासे।
हरिन नयन-भय सर-भय कोकिल
गति-भय गज बनवासे॥

अपह्नुति—

कत न वेदन मोहि देहि मदना।
हर नहि बला, मोहि जुवति जना॥
विभुति-भूषन नहि, चानन क रेनू।
बघ छाल नहि, मोरा नेतक बसनू॥
नहि मोरा जटाभार, चिकुर क बेनी।
सुर-सरि नहि, मोरा कुसुम क स्रेनी॥
चाँद क बिन्दु मोरा, नहि इन्दु छोटा।
ललाट पावक नहिं, सिन्दुर का फोटा॥
नहि मोरा कालकूट, मृगमद चारु॥
फनपति नहिं, मोरा मुकुता हारु॥

उत्प्रेक्षा—

कुच जुग परसि चिकुर फुजि परसल
ता अरुझाएल हारा
जनि सुमेरु ऊपर मिलि ऊगल
चाँद बिहिनु सब तारा॥

रूपक—

पल्लवराज चरन-जुग सोभित
गति गजराज क माने।
कनक-कदलि पर सिंह समारल
तापर मेरु समाने॥

यमक—

सारँग नयन बयन पुनि सारँग
सारँग तसु समधाने।
सारँग ऊपर उगल दस सारँग
केलि करथि मधुपाने॥

उपमा—

सुजन क प्रेम हेम समतूल।
दहइत कनक निगुन होय मूल।
टुटइत नहिं टुट प्रेम अदभूत।
जइसन वढ़ए मृनाल क सूत॥

इसी प्रकार समस्त पदावली में अलंकार भरे पड़े हैं, परन्तु इन अलंकारों की योजना स्वभावतः अपने आप हुई है। विद्यापति को इनके लिये विशेष प्रयास नहीं करना पड़ा है।

विद्यापति जी ने अपनी पदावली में वैदर्भी रीति का अधिक अवलम्बन किया है। इसी को उपनागरिका वृत्ति भी कहते हैं। उपनागरिका वृत्ति में सानुनासिक वर्ण तथा वर्ग के पंचम वर्णों की योजना अधिक होती है। इसीलिये इस रचना में मधुरता अधिक आ जाती है। यही कारण है कि पदावली में माधुर्य गुण की प्रधानता पाई जाती है। पाठक पदों के पढ़ते ही रस में डूब जाते हैं, उसका मधुर आस्वादन करने लगते हैं।

विद्यापति के काव्य में प्रकृति चित्रण

प्रकृति-चित्रण काव्य का एक विशेष अंग सदा से रहा है। परन्तु हिन्दी साहित्य में उसे वह ख्याति नहीं प्राप्त हुई जो संस्कृत एवं अँग्रेजी साहित्य में प्राप्त है। उसका कारण स्पष्ट है। हिन्दी में प्रकृति चित्रण स्वतंत्र रूप से हुआ ही नहीं है। जो कुछ हुआ भी है वह नहीं के बराबर है। हिन्दी-कवियों ने प्रकृति को आलम्बन के रूप में न लेकर विशेषतया उद्दीपन के रूप में ही लिया है। विद्यापति जी ने अपनी पदावली में जहाँ कहीं प्रकृति चित्रण किया है वह केवल उद्दीपन के रूप में ही है।

'मोरा रे अँगन मा चनन केरि गछिया
ताहि चढ़ि कुरुरय काग रे।'

इस पंक्ति में 'सगुनौटी' की प्राचीन परम्परा का संरक्षण तो है ही, साथ ही पेड़ों पर पक्षियों का बैठकर बोलना और उसे सुन कर विरहिणी के अन्तः करण में कुछ आशा का संचार होने का वर्णन भी बहुत ही स्वाभाविक है।

"फुटल कुसुम नव कुञ्ज कुटिर बन
कोकिल पंचम गावे रे।
मलयानिल हिम सिखर सिधारल

में जहाँ प्रकृति का सुन्दर मृदुल रूप देखने को मिलता है वहीं—"पिया निज देश न आवेरे।" से विरह की ज्वाला भी धधकती हुई दिखलाई पड़ती है।

"सरस बसन्त समय भल पाओलि
दछिन पवन बहु धीरे।" में पाठक जब तक बसन्त की शीतल-मन्द-सुगन्धित वायु के झोंके के आनन्द में डूबता नहीं कि उसे—

"सपनेहुँ रूप वचन एक भाखिए
मुख सों दुरि करु चीरे।" में सुन्दर चन्द्र मुख का दर्शन होने लगता है और वह अपनी स्वाभाविक प्रकृति में आ जाता है।

इसी प्रकार "नव वृन्दावन नव नव तरुगन
नव नव विकसित फूल।
नवल बसन्त नवल मलयानिल
मातल नव अलि कूल॥

में यद्यपि प्रकृति का अच्छा चित्र उपस्थित किया गया है परन्तु—"विहरइ नन्दकिशोर
नव नव प्रेम विभोर।" द्वारा उद्दीपन विभाव का ही रूप सामने स्पष्ट हो जाता है। वास्तव में विद्यापति जी ने

अपनी पदावली में प्रकृति वर्णन किया ही नहीं है, उद्दीपन विभाव के रूप में जहाँ कहीं प्रसंगतः आ गया है उसका एक रूप सा खड़ा हो गया है, चाहे वह दो एक पंक्तियों में ही क्यों न आया हो।

पदावली में मुहावरों का उचित प्रयोग

विद्यापति जी निसर्ग-सिद्ध कवि थे, मानव स्वभाव एवं समाज की रीति नीति से पूर्ण भिज्ञ थे। भाषा सरल, सुबोध, ग्रामीण क्षेत्रों में मँजी हुई, अपढ़ जनता के भी सम्पर्क में व्यवहृत होने वाली ही है। अतः उसमें मुहावरों का फबना स्वभाविक ही है। मुहावरों के प्रयोग करने में विद्यापति जी बहुत पटु थे। जिस भाषा में स्वाभाविकता के साथ साथ प्रवाह की मात्रा प्रबल रहती है उसी में मुहावरे उचित रूप से बैठते भी हैं। यह विशेषता विद्यापति जी की पदावली की भाषा में विद्यमान है। इसी लिये उसमें मुहावरे और लोकोक्तियों का अच्छा प्रयोग हो सका है।

'आन क दुःख आन नहिं जान'
'वारि बिहुँन सर केओ न पूछ'
'अपन करम-दोख अपनहिं भुंजइ जे जन
परबस होइ।'
'भिन-भिन राज भिन बेवहार'
'समय न बूझय अचतुर चोर,
'कतय भीति जो दृढ़ अनुराग,
'एक क खोन अओ क अवलम्ब'
'सब तहँ बड़ थिक परउपकार'
'आहति पड़ने बुझिय विवेक'
'आरति गाहक महग बेसाह'
'बढ़हु भुखल नहिं दुहु कर खाय'
'बिनु साहस अभिमत नहिं पूर'

'कवि चोरि गौं चेतन चोर'

आदि मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग हम उचित स्थल पर पदावली में पाते हैं।

विद्यापति के पद

विद्यापति ने पदावली में कितने पदों की रचना की हैं, उनका क्रम क्या है ? इसका कुछ भी पता नहीं चलता। सूरदास के सूरसागर की भाँति विद्यापति के पदों का भी संग्रह विभिन्न रूप में हुआ है। इनके पदों पर तीन क्षेत्रों का प्रभाव बाद में पड़ा है और उन्हीं प्रभावों से युक्त ही पदों का प्रकाशन हुआ है। बंगाल से जो इनके पदों का प्रकाशन हुआ है उस पर बंगाल का प्रभाव स्वाभाविक ही है। नैपाल राज में जो एक प्रति सुरक्षित है उस पर मोरँग जाति वालों की पहाड़ी भाषा का प्रभाव है। बिहारी विद्वानों ने उसे भोजपुरी से प्रभावित कर दिया है। मिथिला में जो इनके पदों का संग्रह हुआ है उस पर आधुनिक मैथिली का प्रभाव परिलक्षित होता है। पदावली के एक ऐसे संस्करण की आवश्यकता है जो अपने स्वाभाविक रूप में हो और इन प्रभावों से रहित हो। इसमें बड़ी खोज और अथक परिश्रम की आवश्यकता है।

विद्यापति जी ने पदों की रचना मुक्तक रूप में ही की है। ये बड़े ही काव्य साधक और भावुक कवि थे। जब जो भावना हृदय में तरंगित होती थी उसी भावना का मूर्तरूप शब्दों द्वारा दे दिया करते थे। इसी प्रकार स्फुट रूप में ही समस्त पदावली की रचना हुई है। यही कारण है कि इस पदावली के सभी पद अपने में पूर्ण और स्वतंत्र हैं। मुक्तक-काव्य में मुक्तक भावनायें ही व्यक्त की जाती हैं। एक पद का दूसरे से कोई भी सम्बन्ध नहीं रहता। केवल गेय पदों में रचना होने के कारण गीत-काव्य हो गया है। मुक्तक काव्य और गीत-काव्य में यही अन्तर है कि गीत काव्य में छोटे छोटे रमणीय

प्रसंग तो रहते ही हैं साथ ही कोमल तथा मधुर भावों का भी उनमें सन्निवेश भी रहता है, जिससे पदों में सरसता और मधुरता की मात्रा और भी अधिक आ जाती है। पदावली के सभी पद स्वर, ताल, लय तथा रागों से युक्त हैं। गेय पदों के सभी गुण उसमें विद्यमान हैं, अतः इसे गीत-काव्य ही कह सकते हैं।

पदों के क्रम के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता कि उनका क्या क्रम है। वर्तमान संग्रहों में जो पदों का क्रम रक्खा गया है, वह संग्रह-कर्त्ताओं की अपनी रुचि के अनुसार है। विद्यापति ने अपनी रुचि से यह क्रम रक्खा है. इसके लिए कोई प्रमाण नहीं है। वे तो जब जिस भावना में विभोर होते थे तब उसी भावना से प्रभावित होकर उसी ढङ्ग के पदों का निर्माण कर जाते थे। किसी समय किसी ढंग के पदों को लिख जाते थे और किसी समय किसी ढंग के। विहारी सतसई आदि की भाँति इनके पदों का भी क्रम अनिश्चित ही है। इन्होंने कितने पदों का निर्माण किया है? इसका भी ठीक ठीक नहीं पता लगा है। अभी तक जितने भी पद प्रकाशित हुये हैं, उनकी संख्या तीन सौ से लेकर आठ सौ तक मानी जाती है। परन्तु अनुमान तो यह किया जाता है कि विद्यापति जी ने हजारों पदों का निर्माण किया होगा। अभी बहुत से ऐसे पद ग्रामीण क्षेत्रों में विवाह आदि के अवसर पर स्त्रियों द्वारा गाये जाते हैं जिनका सग्रह नहीं हुआ है। विद्यापति के विवाह के गीतों और नचारियों का यदि संग्रह किया जाय तो पदों की संख्या हजार को अवश्य पार कर जायेगी। प्रायः सभी संस्कारों के अवसर पर इनके गीत गाये जाते हैं। महादेव के गीत तो इनके प्रसिद्ध हैं। पदों की रचना विद्यापति ने सभी क्षेत्रों में समान रूप में की है। मिथिला में आप चले जाइये। नवयुवतियों के मुख से इनके प्रेम के गीत स्थल स्थल पर सुनने को मिलेंगे। सायंकाल यदि किसी मन्दिर में जाकर देखिये तो

भक्ति के इनके पद बड़ी तन्मयता के साथ गाये जाते हुये सुने जायेंगे। उसी तन्मयता के साथ बड़ी बूढ़ियों को संस्कारात्मक गीत अवसर पर गाते हुये सुनेंगे। जितना समादर और प्रचार विद्यापति के पदों का है उतना हिन्दी साहित्य के किसी भी कवि का नहीं है। बंगाली बिहारी, मैथिल और मध्य हिन्दी प्रान्त वाले समान रूप से इनके पदों का समादर करते हैं।

विद्यापति किस प्रान्त के थे ?

विद्यापति के विषय में बहुत दिन तक विवाद चलता रहा कि ये बंगाली थे अथवा बिहारी। बंगाली लोग इन्हें अपनी ओर खींचते थे और इसके लिये उनकी भाषा का प्रबल-प्रमाण देते थे। उनका कहना था कि विद्यापति जी ने जिस भाषा में रचना की है। वह बंगला-भाषा से बहुत मिलती जुलती है। बात यह है कि बंगाल प्रांत में कृष्ण भक्ति का प्रबल-प्रचार था। चण्डीदास और चैतन्य महाप्रभु के प्रभाव के कारण सारा बंगाल राधा-कृष्ण-मय हो रहा था। और इधर विद्यापति जी ने भी राधा-कृष्ण विषयक ऐसी रचना की जो जयदेव के गीत गोविन्द के टक्कर की थी। धीरे धीरे उन पदों का भी प्रचार बंगाल में हुआ। बिहार प्रान्त में मैथिलों के प्रभाव के कारण शाक्त-मत का अधिक प्रचार रहा है। इसीलिये बंगाली लोग सोचने लगे कि विद्यापति ऐसा परमवैष्णव कवि शाक्तों के बीच में कैसे हो सकता है ! ये अवश्य बंगाली थे। भाषा की समता थी ही। परन्तु यह नहीं जानते थे कि एक पहुँचा हुआ परम प्रबुद्ध भक्त कवि देश-काल की परिस्थितयों से उतना प्रभावित नहीं होता जितने सर्वसाधारण लोग होते हैं ! विद्यापति जी शाक्तों के बीच में रहते हुए भी परम-शैव थे और एक परम वैष्णव की भाँति राधा-कृष्ण की उपासना में भी पदों की रचना की है। यह उनकी विशाल-हृदयता और उदार भावना का परिणाम था। जहाँ तक भाषा का

प्रश्न है, बंगाली लोग भ्रम के कारण विद्यापति की भाषा के मोह में पड़े थे। बिहारी भाषा केवल बिहार प्रान्त में ही नहीं बोली जाती। वह संयुक्त प्रान्त के पूर्वी भाग अर्थात् गोरखपुर तथा बनारस कमिश्नरी और छोटा नागपुर में भी बोली जाती है। बिहारी भी पूर्वी हिन्दी (अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी) की भाँति हिन्दी की चचेरी बहिन है। इसकी तीन शाखायें हैं। १—मैथिली—जो गंगा के उत्तर दरभंगा के आस-पास बोली और समझी जाती है। २—मगही—यह पटना और गया के आसपास बोली जाती है। ३—भोजपुरी—इसका क्षेत्र बहुत विस्तृत है। बनारस के आसपास तक इसका प्रभाव दिखाई पड़ता है। इस बोली के बोलने वालों की संख्या सब बोलियों से अधिक है। बंगला भाषा बिहारी से अधिक सम्पर्क रखने के कारण उससे कुछ मेल खा ही जाती है। वास्तविक बात यह है कि बँगला भाषा का प्रादुर्भाव भी प्राकृत के अपभ्रंश से ही हुआ है और बिहारी की मैथिली शाखा भी अपभ्रंश से ही निकली है। पूर्वी हिन्दी का विकास अर्द्ध मागधी अपभ्रंश से हुआ है। अतः बँगला और बिहारी (मैथिली) में समता का होना स्वाभाविक ही है। इसी भ्रम वश बंगाली भाइयों ने पदावली की भाषा को बँगला बताया है। इन्हीं उक्त कारणों से ही विद्यापति जी हिन्दी के कवि माने जाते हैं। मैथिली भाषा—जैसा कि ऊपर कहा गया है—हिन्दी ही के अन्तर्गत मानी जाती है। अतः विद्यापति जी बंगाली नहीं किन्तु बिहारी ही थे। राजा शिवसिंह का आश्रय, उनका दान पत्र, विद्यापति की वंशावली, गढ़ विसपी का निवास तथा मैथिली भाषा आदि इसके ठोस प्रमाण हैं कि विद्यापति जी बिहारी ही थे। उनकी विद्वत्ता, उनकी कवित्व शक्ति, उनकी प्रगाढ़ भक्ति तथा इनसे भी बढ़कर उनकी सरस पीयूषधारा के मोह ने ही लोगों को अपनी-अपनी ओर खींचने के लिए बाध्य किया है। परन्तु अब तो खोज के आधार पर भी यह निश्चित हो चुका है कि विद्यापति जी मैथिल ही थे।

विद्यापति की भक्ति-पद्धति

बड़े-बड़े भक्तों, महात्माओं एवं कवियों की समालोचना करते समय समालोचक लोग उनकी कृतियों के आधार पर अनेक प्रमाण देते हुए अनेक मार्गों की ओर उनको घसीटते हैं। सभी प्रकार के समालोचकों को पहुँचे हुए भक्तों एवं महात्माओं के विषय में इस बात की ओर ध्यान रखना चाहिए कि वे लोग व्यापकत्व भावना से अपने अभीष्ट देव की उपासना किया करते हैं। उनके सामने 'सर्व देव नमस्कार केशवप्रति गच्छति' की भावना रहती है। इसीलिए वे किसी भी देवी-देवता की उपासना का विरोध नहीं करते, अपितु वे स्वयं उसके अनेक रूपों की उपासना में एकत्व की भावना और एकरूप की उपासना में बहुत्व की भावना का आरोप किये बैठे रहते हैं। वे सभी रूपों में अपने अभीष्ट देव को देखते हैं श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यास जी ने अनेक पुराणों द्वारा उसी ब्रह्म की अनेकरूपता का प्रतिपादन किया है। अतः किसी भक्त कवि के लिये यह निर्धारित करना कि वह अमुक संप्रदाय से ही सम्बन्ध रखता था, असंगत होगा। लोग किसी विशेष सम्प्रदाय के साथ किसी महान् विभूति का सम्बन्ध जब जोड़ते हैं तब उसका तात्पर्य केवल इतना ही होता है कि उस महानविभूति का शारीरिक (सांसारिक) सम्बन्ध अमुक सम्प्रदाय के कुटुम्बियों के साथ होने के कारण अमुक सम्प्रदाय से रहा है।

महाकवि, भक्त-प्रवर विद्यापति के विषय में भी यही बात कही जा सकती है। विद्यापति की रचना के आधार पर कुछ लोग इन्हें शक्ति का उपासक बताते हैं, कुछ विष्णु के और कुछ लोग शिव के। बात यह है कि इन्होंने सभी की उपासना में पदों की रचना की है और समान तन्मयता के साथ की है। 'दुर्गाभक्ति तरंगिणी' में शक्ति का महत्व बताया गया है। पदावली में भी देवी की उपासना

के पद हैं। परन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि विद्यापति शाक्त थे। तुलसी दासजी ने अपनी विनयपत्रिका में अनेक देवी देवताओं की बन्दना की है, परन्तु फिर भी वे राम के अनन्य भक्त कहे जाते हैं। 'बिनु पग चलै सुनै बिनु काना' कहने पर भी वे निराकारोपासक नहीं माने जाते। यदि भक्त अपनी भक्ति-भावना को किसी भी देवी-देवता की उपासना के रूप में व्यक्त करे तो उसका यही तात्पर्य समझना चाहिये कि वह अपने अभीष्ट देव की व्यापकता को स्वीकार ही नहीं करता किन्तु व्यावहारिक रूप में देखता भी है।

विद्यापति जी ने पदावली की रचना वैष्णव साहित्य के रूप में की है। उसमें राधा-कृष्ण की प्रेममयी मूर्ति की झाँकी उसी प्रकार दिखाई गई है जिस प्रकार कवि जयदेव ने अपने गीत गोविन्द में दिखाया है। अपने अभीष्ट देव के विष्णु रूप में जब वे तल्लीन हुए उस समय की भावनाओं के चित्र पदावली में देखने को मिलते हैं। असली बात तो यह है कि हमारे हिन्दू समाज मात्र में प्रत्येक संस्कारों के अवसर पर राम-सीता और राधा-कृष्ण विषयक ही गीत अधिक गाये जाते हैं। कारण यह है कि राम और कृष्ण का जीवन हमारे समाज के साथ अधिक घुला मिला है। विद्यापति जी समाज की साधारण जनता के जीवन से पूर्ण भिज्ञ थे। यही कारण है कि इन्होंने राधाकृष्ण विषयक ऐसे गीतों का निर्माण किया जो साधारण जीवन के गीतों के साथ मिले हुए हैं। यह उपासना उनकी सामाजिक रूप में थी।

उपासना का उचित मार्ग किसी मनुष्य का उसके वैयक्तिक जीवन में देखा जा सकता है। वैयक्तिक रूप में विद्यापति जी ने 'शिव' की आराधना की है। शिव की उपासना में भक्त केवल वैयक्तिक दृष्टिकोण रखता है। 'शिव' विद्यापति के अभीष्ट देव थे इसीलिये उन्होंने इनकी उपासना की और पदों में उनका गुणगान भी किया

विद्यापति के निवास-स्थान 'बिसपी' में विश्वेश्वरी देवी के मन्दिर की ओर संकेत करके लोग उन्हें देवी का उपासक बताते हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि 'विश्वेश्वरी देवी, विद्यापति जी की कुल देवी थी। परन्तु यह कोई आवश्यक नहीं है कि कुलदेवी अथवा कुलदेवता को कोई अपना अभीष्ट देव भी बनावे। इन पंक्तियों में लेखक के कुल में 'शारदा देवी' की उपासना होती है, परन्तु सम्पूर्ण कुटुम्ब शैव है विद्यापति के शैव होने में कई और भी प्रमाण हैं। इनकी वंश परम्परा में सभी लोग शिव की उपासना करते आये हैं। शैव सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखने वाले कई ग्रन्थों का निर्माण भी किया है। चण्डेश्वर ठाकुर का लिखा हुआ "शैव मानसोल्लास' प्रसिद्ध है। विद्यापति के पिता गणपति ठाकुर कपिलेश्वर महादेव की उपासना करते थे और उन्हीं के प्रसाद से विद्यापति जी का जन्म भी हुआ था। पिता की शंकर-भक्ति का प्रभाव इनके ऊपर अवश्य पड़ा होगा। उगना नाम के इनके सेवक के विषय में प्रसिद्ध ही है कि महादेव उगना के रूप में विद्यापति की सेवा किया करते थे। उनकी भक्ति पर शंकर जी प्रसन्न थे। 'भक्त आतुर प्रभु मान-महेश्वर जानि करत हुआ सेवा' से भी व्यक्त होता है कि इन्होंने शिव की ही उपासना की है। अपनी कवित्व प्रतिभा के प्रदर्शन के लिये इन्होंने राधा-कृष्ण के चरित्र को लिया है और अपनी भक्ति भावना को व्यक्त करने के लिये शिव को ही अपनाया है। ऐसा प्रसिद्ध है कि विद्यापति जी ने बाणेश्वर शिव की स्थापना भी की थी और वह मूर्ति अब भी विद्यमान है। इनकी चिता पर शिव मंदिर अभी तक बना हुआ है विद्यापति के आश्रय-दाता राजा शिवसिंह शैव थे इसकी पुष्टि उस दान पत्र से होती है जो विद्यापति को मिला था। नचारियों में अधिक तर शिव सम्बन्धी ही हैं जो शिव रात्रि पर आज भी गाई जाती हैं। विद्यापति ने स्वयं अपनी उपासना के विषय में कहा है :—

"तोड़ब कुसुम तोड़ब बेलपात।
पूजब सदाशिव गौरिक सात॥"

इससे स्पष्ट है कि जिस समाज एवं कुटुम्ब से विद्यापति का सम्बन्ध था, वह शैव था और विद्यापति स्वयं शिव के अनन्य भक्त थे।

हिन्दी-साहित्य में विद्यापति का स्थान

विद्यापति की रचना, बहुभाषा-ज्ञान कवित्व-शक्ति, प्रसाद गुण, पांडित्य तथा अनन्य भक्ति देखकर कोई भी आलोचक इन्हें हिन्दी के किसी भी महाकवि के समकक्ष रखने में न हिचकिचायेगा। हमारा तो विचार है कि तुलसी सूर को छोड़ कर इनकी समता करने वाला हिन्दी साहित्य में कोई दूसरा कवि नहीं है। यदि चंदवरदाई को छोड़ दें तो विद्यापति ही हिन्दी के आदि महाकवि ठहरते हैं। आश्चर्य है कि ऐसे धुरन्धर विद्वान और प्रतिभाशाली कवि को हिन्दी नवरत्नों में स्थान नहीं दिया गया है। हिन्दी साहित्य में तृतीय स्थान के अधिकारी विद्यापति ही हो सकते हैं। यदि अवसर मिला तो तुलनात्मक अध्ययन और विशद-समीक्षा के साथ इसकी पुष्टि में सप्रमाण कुछ लिखने का प्रयास करेंगे।

गौतम-निवास
प्रयाग

ओंकारनाथ मिश्र

द्वितीय संस्करण की भूमिका

मैथिल कोकिल विद्यापति के मधुर पदों का यह संकलन काव्य-रसिकों को अधिक प्रिय लगा यह जान कर मुझे हार्दिक प्रसन्नता है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन की उत्तमा परीक्षा के पाठ्य क्रम में यह संग्रह निर्धारित है। विश्व विद्यालयों की उच्च कक्षाओं में भी विद्यापति के पदों का संग्रह पढ़ाया जाता है। उन कक्षाओं के छात्रों के लिये भी यह संकलन अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है। यह संस्करण अधिक परिमार्जित एवं कुछ परिवर्द्धित कर दिया गया है। आशा है सहृदय पाठकों के लिये यह अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

गौतम-निवास, प्रयाग

आषाढ़ी पूर्णिमा २००७ — ओंकार नाथ मिश्र

प्रार्थना

नन्द-नन्दन

नन्द क नन्दन कदम्ब क तरु—तर
धिरे धिरे मुरलि बजाव।
समय सँकेत-निकेतन बइसल
बेरि बेरि बोलि पठाव।
सामरि तोरा लागि
अनुखन विकल मुरारि॥
जमुना क तिर उपवन उदवेगल
फिरि फिरि ततहि निहारि॥
गोरस बेचए अवइत जाइत,
जनि जनि पुछ बनमारि॥
तोहेँ मतिमान, सुमति मधुसूदन,
वचन सुनह किछु मोरा॥
भनइ विद्यापति सुन बरजौवति
वन्दह नन्द-किसोरा॥

---

१. सँकेत-निकेतन=नायक नायिकाओं के मिलने का संकेत-स्थल। सामरि=श्यामा, षोडस वर्षीया नायिका, राधा के लिये प्रयोग किया गया है। तोरा लागि=तुम्हारे लिये। अनुखन=प्रतिक्षण। उदवेगल=उद्विग्न मन होकर। ततहि=उसी ओर। जनि-जनि=प्रत्येक ग्वालिनो से। बनमारि=बनमाली, श्रीकृष्ण। तोहेँ=तुम्हारे ऊपर। मतिमान=मन मान गया है, अनुरक्त है। जौवति—युवती। वन्दह=वन्दना करो।

देवी

जय-जय भैरवि असुर-भयाउनि
पसुपति-भामिनि माया।
सहज सुमति वर दिअओ गोसाउनि
अनुगति गति तुअ पाया॥

वासरि-रैनि सवासन सोभित
चरन, चन्द्रमनि चूड़ा।
कतओक दैत्य मारि मुँह मेलल,
कतओ उगिल कैल कूड़ा॥

सामर वरन, नयन अनुरंजित,
जलद जोग फुल कोका।
कट कट विकट ओठ-पुट पाँड़रि
लिधुर-फेन उठ फोका॥

घन घन घनए घुघुर कत बाजय,
हन हन कर तुअ काता।
विद्यापति कवि तुअ पद सेवक,
पुत्र विसरु जनि माता॥

---

३. दिअओ = दीजिये। पाया = चरण। सवासन = शवासन, मुर्दे का आसन। कत ओक = कितने ही। उगलि कैल कूड़ा = खा खा कर हड्डी उगल कर ढेर लगा दिया। सामर वरन = महाकाली। अनुरंजित = रक्तवर्ण। जलद.........कोका—श्यामवर्ण शरीर में रक्त वर्ण नेत्र ऐसे लगते हैं मानों बादल में रक्त कमल विकसित हों। फोका = बुलबुला। घुघुर = घुँघरू। काता = कटार।

[५]

छिनु छिनु उपजत अंकुर भेल।
चरन-चपल-गति लोचन लेल॥

अब सब खन रह आँचर हात।
लाजे सखिगन न पुछए बात॥

कि कहब माधव वयस क संधि।
हेरइत मनसिज मन रहु बंधि॥

तइअओ काम हृदय अनुपाम।
रोपल घट ऊचल कए ठाम॥

सुनइत रस कथा थापए चीत।
जइसे कुरंगिनी सुनए संगीत॥

सैसव जौवन उपजल बाद।
केओ न मानए जय अवसाद॥

बिद्यापति कौतुक बलिहारि।
सैसव से तनु छोड़नहि पारि॥

चउँकि चलए खने खन चलु मन्द ।
मनमथ-पाठ पहिल अनुबन्ध ॥
हिरदय मुकुल हेरि हेरि थोर ।
खने आँचर दए खने होए भोर ॥
बाला सैसव तारुन भेट ।
लखए न पारिअ जेठ कनेठ ॥
विद्यापति कह सुन बर कान ।
तरुनिम सैसव चिन्हइ न जान ॥

[६]

पीन पयोधर दूबरि गता ।
मेरु उपजल कनक-लता ॥
ए कान्हु ए कान्हु तोरि दोहाई ।
अति अपूरुब देखलि साई ॥
मुख मनोहर अधर रंगे ।
फूललि मधुरी कमल संगे ॥
लोचन-जुगल भृंग अकारे ।
मधु क मातल उड़य न पारे ॥
भउँह क कथा पूछह जनू ।
मदन जोड़ल काजर धनू ॥
भन विद्यापति दूति वचने ।
एत सुनि कान्हु कएल गमने ॥

---

५. नयन-कोन = नेत्र कोण, कटाक्ष । अनुबन्ध = भूमिका, मन में प्रेम-प्रसार की प्रथम भूमिका है । हिरदय-मुकुल = कुच । भोर = भूल जाती है । कनेठ = कनिष्ठ, छोटा । कान = श्रीकृष्ण जी । तरुनिम = तरुणाई ।

[७]

कि आरे ! नव जौवन अभिरामा ।
जत देखल तत कहए न पारिअ
छओ अनुपम एक ठामा ॥
हरिन इन्दु अरविन्द करिनि हेम
पिक बूझल अनुमानी ।
नयन वदन परिमल गति तन रुचि
अओ अति सुललित बानी ॥
कुच युग परसि चिकुर फुजि पसरल
ता अरुझायल हारा ।
जनि सुमेरु ऊपर मिलि ऊगल
चाँद विहिनु सब तारा ॥
लोल कपोल ललित मनि-कुंडल
अधर बिम्ब अध जाई ।
भौंह भ्रमर, नासापुट सुन्दर
से देखि कीर लजाई ॥
भनइ विद्यापति से बर नागरि
आन न पावए कोई ।
कंसदलन नारायन सुन्दर
तसु रंगिनी पए होई ॥

---

६. गता=शरीर, गात । कनक-लता=कांचन वर्ण, कामिनी की शरीर । साई=वही, उसको । मधुरी=बन्धूक, एक प्रकार का लाल फूल । भउँह=भौंह । मदन-धनू=कामदेव ने मानों कज्जल का धनुष बनाया है ।

[८]

माधव, की कहब सुन्दरि रूपे ।
कतेक जतन विहि आनि समारल
देखल नयन सरूपे ॥
पल्लव-राज चरन-जुग सोभित
गति गजराज क भाने ।
कनक-कदलि पर सिंह समारल
तापर मेरु समाने ॥
मेरु ऊपर दुइ कमल फुलायल
नाल बिना रुचि पाई ।
मनिमय हार धार बहु सुरसरि
तओ नहि कमल सुखाई ॥
अधर बिम्ब सन, दसन दाड़िम-बिजु
रवि ससि उगथिक पासे
राहु दूर बस नियरो न आवथि
तैं नहि करथि गरासे ॥
सारँग नयन बयन पुनि सारँग
सारँग तसु समधाने ।
सारँग ऊपर उगल दस सारँग
केलि करथि, मधुपाने ॥

---

७. कि = कैश । आरे = विस्मयादि बोधक । करिनि = हथिनी । हेम = स्वर्ण । परिमल = पराग । फुजि = छूटकर । हारा = हार । बिहुनि = बिना । तारा = नक्षत्र । अध जाई = नीचे चला जाता । से = उसे । कीर = तोता । रंगिनि = स्त्री । पए = परन्तु ।

अहा ! देखिये तो सही, कैसा सुन्दर नवयौवन है ! आँखों से जैसा यह देखा जाता है वैसा मुख से वर्णन नहीं किया जा

भनइ विद्यापति सुन वर जौबति
एहन जगत नहि आने।
राजा सिवसिंघ रुपनरायन—
लखिमा देइ पति भाने॥

सकता। यहाँ तो छः हों अपूर्व (प दार्थ) एक स्थान पर एकत्र हैं। हरिण, चन्द्रमा, कमल, हथिनी, स्वर्ण और कोयल ये छः, ऐसा अनुमान से समझ में आता है कि नेत्र, मुख, शरीर-सुवास (सुगन्धि), चाल, शरीर की कान्ति और अत्यन्त सुन्दर मधुर वाणी के उपमान हैं। दोनों कुचों को स्पर्श कर के केश बिखर गया है, और उसमें हार (मुक्तमाल) जाकर उलझ गया है, वह ऐसा प्रतीत होता है मानों सुमेरु पर्वत पर चन्द्रमा को छोड़ कर सब तारे उदय हुये हों। सुन्दर कपोल है, मणियों से जटिल सुन्दर कुण्डल (कानों में सुशोभित हैं), अधर की शोभा को देखकर बिम्बाफल लज्जित होकर नीचे चला गया है। भौहें भ्रमर के समान काली हैं। नासापुट बहुत ही सुन्दर है, उसे देखकर तोता लज्जित होता है।

८. कि=क्या। बिहि=विधि। सरूपे=रूप सहित, प्रत्यक्ष। पल्लव-राज=कमल। कनक-कदलि=जंघा। सिंह=कटि। मेरु=ऊँचा वक्षःस्थल। दुइ कमल=दो कुच। नाल=कमल की नाल दण्डी। हार=मोती की माला। धार बहु सुरसरि=वही मानों गंगा की अनेक धारा है। तओ=इसीलिये। बिम्ब=बिम्बाफल। सन=समान। बिजु=बीज। रवि···पासे=सूर्य और चन्द्र पास पास उदय हुए हैं (मुख-चन्द्र में लाल बिन्दु सूर्य है)। राहु=केश के लिये आया है। आवथि=आता है। गरासे=ग्रसना, निगलना। सारँग=हरिण। सारंग—कोयल। सारँग=धनुष, कामदेव। तस=उसके। समधाने=कटाक्ष। सारँग=कमल (ललाट के लिये)। दस सारंग=बहुत भौंरे, केश की घुँघुराली लटें। एहन=इस प्रकार। आने=अन्य।

[६]

सुधा मुखि के विहि निरमिल बाला।
अपरुब रूप मनोभव-मंगल
त्रिभुवन विजयी माला॥
सुन्दर बदन चारु अरु लोचन
काजर-रंजित भेला।
कनक-कमल माझ काल भुजंगिनि
स्रीयुत खंजन खेला॥
नाभि-विवर सयँ लोम लतावलि
भुजगि निसास-पियासा।
नासा खग-पति-चंचु भरम-भय
कुच-गिरि-संधि निवासा॥
तिन बान मदन तेजल तिन भुवने
अवधि रहल दओ बाने।
विधि बड़ दारुन बधए रसिक जन
सोंपल तोहर नयाने॥
भनइ विद्यापति सुन बरजौवति
इह रस केओ पए जाने।
राजा सिवसिंघ रूपरायन
लखिमा देइ रमाने॥

---

६. विहि=विधि, ब्रह्मा। निरमिल=निर्माण किया। अपरुब=अपूर्व। मनोभव-मंगल=मनोवांछित मंगल स्वरूप। त्रिभुवन विजयी माला=तीनों लोक को जीतने वाली माला के समान। भेला=हुआ। सुन्दर·····खेला=सुन्दर मुख मंडल में कज्जल रंजित नेत्र ऐसे लगते हैं मानों स्वर्ण कमल पर काली नागिन हो और नेत्र इस प्रकार

[१०]

चिकुर निकर तम-सम
पुनु आनन पुनिम ससी ।
नयन-पंकज के पतिआओत
एक ठाम रहु बसी ॥
आज मोयँ देखलि बारा ।
लुबुध मानस, चालक मयन
कर की परकारा ॥
सहज सुन्दर गोर कलेवर
पीन पयोधर सिरी ।
कनक-लता अति बिपरित
फरल जुगल गिरी ॥
भन विद्यापति बिहि क घटन
के न अद्भुत जान ।
राय सिवसिंघ रूपनरायन
लखिमा देइ रमान ॥

चंचल हैं मानों खंजन पक्षी खेल रहे हों। सो-युत=शोभा से युक्त। सयँ=समान। लोम-लतावलि=रोम रूपी लता। नाभि विवर...... निवासा। नाभि से वक्षस्थल तक जो रोमावली है वह मानो सर्पिणी है और नाभि रूपी गुफा से निकल कर श्वास रूपी गंध को पान करने के लिये चली, परन्तु नासिका रूपी गरुड़ की चोंच को देखकर कुच रूपी पर्वत की संधि में छिप गई। तिन=तीन। तेजल=छोड़ा। अवधि=शेष। दओ=दो। बाने=बाण। नयाने=नेत्र। के ओ पए जाने=कोई कोई ही जानता है।

१०. चिकुर-निकर=बालों का समूह। तम-सम=अंधकार के समान। पुनिम=पूर्णिमा। के पति आओत=कौन विश्वास करेगा।

[११]

सजनी, अपरूप पेखल रामा ।
कनक-लता अवलम्बन ऊअल
हरिन-हीन हिम—धामा ॥

नयन-नलिनि दओ अंजन रंजइ
भौंह विभंग विलासा ।
चकित चकोर-जोर बिधि बाँधल
केवल काजर पासा ॥

गिरिवर-गरुअ पयोधर-परसित
गिमगज-मोतिक हारा ।
काम कम्बु भरि कनक-सम्भु परि
ढारत सुरसरि-धारा ॥

पएसि पयाग जाग सत जागइ
सोइ पावए बहुभागी ।
विद्यापति कह गोकुल-नायक
गोपी जन अनुरागी ॥

मोयँ = मैंने । बारा = बाला, स्त्री । लुबुध-मानस = मन का लोभी । चालक मयन = कामदेव को उदीप्त करने वाली । की = किस । सिरी = शोभा । घटन = सृष्टि । के = कौन ।

११. पेखल = देखा । रामा = स्त्री । कनक-लता = शरीर । हरिन-हीन = लांछन रहित । हिमधामा = चन्द्रमा । दओ = दो । चकोर-जोर = चकोर पक्षी का जोड़ा । गरुअ = भारी । पयोधर = कुच । परसित = स्पर्श करती हुई । गिम = ग्रीवा । कम्बु = शंख । गिरिवर‥ हारा = भारी पयोधरों को स्पर्श करती हुई

[१२]

कबरी-भय चामरि गिरि कन्दर
मुख-भय चाँद अकासे।
हरिन नयन-भय, सर-भय कोकिल
गति-भय गज बनबासे॥
सुन्दरि किय मोहि सँभासि न जासि।
तुअ डर इह सब दूरहि पलायल
तुहुँ पुन काहि डरासि॥
कुच-भय कमल-कोरक जल मुंद रहु
घट परवेस हुतासे।
दाड़िम सिरिफल गगन वास करु
शम्भु गरल कठ ग्रासे॥
भुज भय पंक मृनाल नुकाएल
कर-भय किसलय काँपे।
कवि-सेखर भन कत कत ऐसन
कहय मदन परतापे॥

गजमुक्ता की माला गर्दन में ऐसी प्रतीत होती है मानो कामदेव शंख में रखकर गंगा की धारा को शिव के ऊपर गिरा रहे हों। पयसि = बैठकर। पयाग = प्रयाग। जाग = यज्ञ। जागइ = यज्ञ करे।

१२. कबरी = केश-पाश (केश पाश की समता न कर सकने के कारण चमरी गाय भयभीत होकर पहाड़ों की गुफाओं में जा छिपी) सर = स्वर, वाणी। किए = क्यों। सभासि = सम्भाषण करके। जासि = जाती है। परवेस = प्रवेश करता है। हुतासे = अग्नि में। नुकायल = लुक गया, छिप गया। कर = हथेली। किसलय = नवीन पत्र।

[१३]

जाइत पेखल नहाएलि गोरी।
कति सयँ रूप धनि आनलि चोरी॥

केस निंगरइत वह जल-धारा।
चमर गरए जनि मोतिम हारा॥

अलकहि तीतल तेँ अति सोभा।
अलिकुल कमल बेढ़ल मधुलोभा॥

नीर निरंजन लोचन राता।
सिंदुर मंडित जनि पंकज-पाता॥

सजल चीर रह पयोधर-सीमा।
कनक-बेल जनि पड़ि गेल हीमा॥

ओ नुकि करतहि चाहि किए देहा।
अबहि छोड़ब मोहि तजब नेहा॥

ऐसन रस नहि पाओब आरा।
इथे लागि रोइ गरए जल धारा॥

विद्यापति कह सुनह मुरारि।
बसन लागल भाव रूप निहारि॥

---

१३. कति सयँ=कहाँ से। निंगारइत=निचोड़ते समय। जनि=मानो। अलक=केश। तीतल=सिक्त, भीगा हुआ। बेढ़ल=घेर लियाहै। नीर···राता=पानी से अंजन धुल जाने के कारण नेत्र लाल हैं। सजल-चीर=भीगी हुई साड़ी। पयोधर-सीमा=कुच पर। हीमा=बर्फ। ओ=वह, वस्त्र। नुकि=छिपकर। तेजब=छोड़ देना। नेहा=प्रेम। आरा=और जगह। इथे लागि=इसलिये।

[१४]

नहाई उठल तीर राइ कमल मुखि
समुख हेरल वर कान ।
गुरुजन संग लाज धनि नत-मुखि
कइसन हेरब बयान ॥

सखि हे, अपरूब चातुरि गोरि ।
सब जन तेजि कए अगुसरि संचरि
आड़ बदन तेहि फेरि ॥

तँह पुनि मोति-हार तोरि फेंकल
कहइत हार टुटि गेल ।
सब जन एक-एक चुनि संचरु
श्याम-दरस धनि लेल ॥

नयन चकोर कान्ह-मुख ससि-वर
कएल अमिय-रस पान ।
दुहु दुहु दरसन रसहु पसारब
कवि विद्यापति भान ।

---

१४. राइ = राधा । समुख = सामने । हेरल = देखा । कान = कृष्ण । बयान = वदन, मुख । तेजि. कए = छोड़कर । अगुसरि = आगे । संचरि = चलकर के । आड़ = ओट में । संचरु = इकट्ठा करते हैं । लेल = लिया । कएल = किया । दुहु ... पसारब = दोनों परस्पर दर्शन करके प्रेम रस का संचार करते हैं ।

[१५]

पथ-गति नयन मिलल राधाकान।
दुहु मन मनसिज पूरल संधान॥

दुहु मुख हेरइत दुहु भेल भोर।
समय न बूझए अचतुर चोर॥

विदगधि संगिनी सब रस जान।
कुटिल नयन कएलन्हि समधान॥

चलल राज-पथ दुहु उरझाई।
कह कवि-सेखर दुहु चतुराई॥

[१६]

सहजहि आनन सुन्दर रे
भौंह सुरेखलि आँखि।
पंकज मधु पिबि मधुकर रे
उड़ए पसारए पाँखि॥

ततहि धाओल दुहु लोचन रे
जतहि गेलि वर नारि।
आसा लुबुधल न तेजए रे
कृपन क पाछु भिखारि॥

---

१५. पथ-गति = मार्ग में जाते समय। भेल = हुए। भोर = आत्म-विभोर, बेसुध। समय न बूझए = अवसर नहीं देखता। विदगधि = विदग्धा, काव्य-रसिका। कएलन्हि = किया। समधान = समाधान, प्रेम का प्रत्युत्तर देना।

इंगित नयन तरंगित रे
बाम भँओह भेल भंग।
तखन न जानल तेसर रे
गुपुत मनोभव रंग॥

चन्दन चरचु पयोधर रे
ग्रिम गज मुकुताहार।
भसम भरल जनि संकर रे
सिर सुरसरि जलधार॥

बाम चरन अगुसारल रे
दाहिन तेजइत लाज।
तखन मदन सर पूरल रे
गति गंजए गजराज॥

आत जाइत पथ देखिल रे
रूप रहल मन लागि।
तेहि खन सयँ गुन गौरव रे
धैरज गेल भागि॥

रूप लागि मन धाओल रे
कुच कचन गिरि साँधि।
ते अपराधें मनोभव रे
ततहि धएल जनि बाँधि॥

विद्यापति कवि गाओल रे
रस बुझ रसमंत।
रूपनरायन नागर रे
लखिमा देइ कंत॥

[१७]

पथ-गति पेखल मो राधा।
तखनुक भाव परान पए पीड़लि
रहल कुमुद-निधि साधा॥

ननुआ नयन नलिनि-जनि अनुपम
बंक निहारइ थोरा।
जनि सृंखलि में खगबर बाँधल
दीठि नुकायल मोरा॥

आध बदन ससि बिहसि देखाओलि
आध पीहलि निअ बाहू।
किछु एक भाग बलाहक झाँपल
किछुक गरासल राहू॥

कर-जुग पिहित पयोधर अंचल
चंचल देखि चित भेला।
हेम कमल जनि अरुनित चंचल
मिहिर-तरे निन्द गेला॥

---

१६. सुरेखलि=सुन्दर चित्रित कीगई। भौंह सुरेखलि=भौंहों से सुन्दर बनाई गई है। पिबि=पीकर। धाओल=दौड़कर चले गये। ततहि=वहीं। जतहि=जहाँ पर। पाछु=पीछा। इंगित=संकेत। तरंगित=चंचल। बाम=बाईं। तखन=उस समय। तेसर=तीसरा व्यक्ति। चरचु=लगाया। ग्रिम=ग्रीवा। अगुसारल=आगे बढ़ाया। दाहिन तेजइत=दाहिना रखते ही। लाज=लजा लगती है। गंजए=पराजित करती है। धैरज=धैर्य। साँधि=संधि-स्थान। तै=उसी। ततहि=वहीं। रसमंत=रसिक।

भनइ विद्यापति सुनह मधुरपति
इस रस केह पए बाधा।
हास दरस रस सबहु बुझाएल
नाल कमल दुइ आधा॥

[१८]

अवनत आनन कए हम रहलिहुँ
वारल लोचन चोर।
पिया मुख रुचि पिबए धाओल
जनि से चाँद चकोर॥
ततहु सयँ हठ हटि मो आनल
धएल चरनन राखि।
मधुप मातल उड़ए न पारए
तइअओ पसारए पाँखि॥

---

१७. सो=से। तसनुक भाव=उस वय की भाव भंगिमा। परान=प्राण। पए=तक। कुमुद-निधि=चन्द्र (मुख)। साधा=अभिलाषा। ननुआ=लावण्य युक्त। वंक निहारइ थोरा=तनिक तिरछी चितवन से देखती है। जनि=मानो। खगवर=खंजन पक्षी। झुझाएल=छिपा लिया, चुरा लिया। पिहलि=पिहित [बन्द] कर लिया, ढँक लिया। निअ=निज, अपनी। जलहर=बादल। झाँपल=ढँक दिया। भेला=हुआ। हेम-कमल=स्वर्णकमल (कुच) चिहुर तरे=पूर्द के नीचे (हथेली तले)। निन्द गेला=सो गया। सुनइ=सुनिये। मधुरपति=मथुरा के स्वामी। बाधा=विघ्न। बुझाएल=ज्ञात हुआ। नाल कमल दुइ आधा=नाल (कर) और कमल (कुच) दोनों एक ही वस्तु के आधे आधे भाग हैं।

साधव बोलल मधुर बानी
से सुन मुँदु मोयँ कान।
ताहि अवसर ठाम बाम भेल
घरि धनु पँचवान ॥
तनु पसेव पसाहनि भासलि
पुलक तइसन जागु।
चूनि चूनि भए काँचुअ फाटलि
बाहु वलआ भाँगु ॥
भन विद्यापति कम्पित कर हो
बोलल बोल न जाय।
राजा सिवसिंघ रूपनरायन
साम सुन्दर काय ॥

[१९]

सासर सुन्दर ए बाट आएब
तें मोरि लागलि आँखि।
आरति आँचर साजि न भेले
सब सखिजन साखि ॥

---

१८. बारल=मना किया। पिवए=पीने के लिये। जनि=मानो। से=वह। ततहुँ=वहाँ। हटि=हटकर। आनल=ले आया। मो=मैं। धएल=पकड़ रक्खा। उड़ए न पारए=उड़ नहीं सकता। तइओ=तोभी। पाँखि=पंख। बाम भेल=विरुद्ध हुआ। पंचबान=कामदेव। पसेव=पसीना। पसाहनि=अंगराग। भासलि=धो गया। तइसन=उसी समय। चुनिचुनि-भए=टुकड़े टुकड़े हो गया। काँचुअ=कंचुकी। बलआ=वलय, कंकण। भाँगु=टूट गया।

कहहि मो सखि कहहि मो
कत तकर अधिवास।
दूरहु दुगुन पएँ मैं आवओं
पुनू दरसन आस ॥

कि मोरा जीवन कि मोरा जौवन
कि मोरा चतुरपने।
मदन-बान मुरुछलि अछओं
सहओं जीव अपने ॥

आध पद घरइत मोए देखल
नागर-जन समाज ।
कठिन हिरदय भेदि न भेले
जाओ रसातल लाज ॥

सुरपति-पाए लोचन मागओं
गरुड़ मागओं पाँखि ।
नन्द क नन्दन हों देखि आवओं
मन मनोरथ राखि ॥

---

१६. आरति = आकुलता से । सखि = साखी । कहहि = कहो । तकर = उसका । अधिवास = निवास स्थान । दूरहु दुगुन = दुगुनी दूरी । पएँ = पैदल चलकर । आवओं = आती हूँ । पुनू = पुनः । कि—क्या, व्यर्थ । मुरुछलि = मूर्छित । अछओं = हूँ । मोए = मुझे । नागर-जन = विदग्ध लोग । भेदि न भेले = फट नहीं गया । जाओ = गई । लाज = लज्जा । सुरपति-पाए = इन्द्र के चरणों में (नत होकर) । आवओं = आऊँ ।

[२०]

कत न वेदन मोहि देसि मदना।
हर नहि बला मोहि जुवति जना
विभुति-भूषन नहि चानन क रेनू।
वघछाल नहि मोरा नेतक वसनू।।
नहि मोरा जटा भार चिकुर क वेनी
सुरसरि नहि मोरा कुसुम क स्रेनी।।
चाँद क बिन्दु मोरा नहि इन्दु छोटा।
ललाट पावक नहि सिन्दुर क फोटा।।
नहि मोरा कालकूट मृगमद चारु।
फनपति नहि मोरा मुकुता-हारु।।
भनई विद्यापति सुन देव कामा।
एक पए दूखन नाम मोरा वामा।।

[२१]

कंटक माझ कुसुम परगास।
भमर बिकल नहि पावए पास।।
भमरा भेल घुरए सबे ठाम।
तोहे बिनु मालति नहि बिसराम।।

---

२०. वेदन=वेदना। मदना=कामदेव। हर=शंकर। बला=किन्तु। विभुति-भूषण=राख। चानन=चन्दन। नेतक बसनू=रंगबिरंगी साड़ी। चिकुर=बाल। वेनी=केशपाश। स्रेनी=पंक्ति (माला)। इन्दु छोटा=द्वितीया का चन्द्र। पावक=अग्नि। सिन्दुर का फोटा=सिन्दुर का टीका। मृगमद=कस्तूरी का तिलक। मुकुता हारु=मोती की माला। सुन देव काम=हे कामदेव सुनो। पये=परन्तु। दूखन=दोष। बामा—स्त्री। अपह्नुति अलंकार का अच्छा उदाहरण है।

रसमति मालति पुनु पुनु देखि ।
पिबए चाह मधु जीव उपेखि ॥

ए मधुजीवी तोंने मधुरासि ।
साँचि धरसि मधुमने न लजासि ॥

अपने हुं मने गुनि बुझे अवगाहि ।
तसु दूसन बध लागत काहि ॥

मनहि विद्यापति सौ पय सीब
अधर सुधारस जौ पय पीब ॥

[२२]

आजु हम पेखल कालिन्दी कूले ।
तुअ बिन माधव विलुठए धूले ॥

कत सत रमनि मनहि नहि आने ।
किए विष दाह समय जल पाने ॥

मदन-भुजंगम डंसल कान ।
बिनहि अमिय-रस कि करब आन ॥

कुलपति धरम कांच समतूल ।
मदन दलाल मेल अनुकूल ॥

---

२१. माझ = में । दरसास = प्रकाश, विकसित । नहि पावए पार = पार नहीं पा पाता । पेम = हुआ, मनहर । भुरए = भूलता है । मालति = हे मालती (राधा) । जीव उपेखि = जीव की उपेक्षा करके । मधुजीवी = [illegible] । तोंने = तुम । साँचि = संचित करके । सौ पय [illegible] [illegible] है । जो पय पीब = जो पी पावे ।

आनल बेचि नीलमनि हार।
से तुहु पहिरबि करि अभिलाष॥
नील निचोल झाँपधि निज देह।
जनि घन भीतर दामिनि-रेह॥
चौदिक चतुर सखी चलु संग।
आजु निकुंज करह रस रंग॥

[२३]

ए धनि कमलिनि सुन हित बानि।
प्रेम करबि अब सुपुरुष जानि॥
सुजन क प्रेम, हेम समतूल।
दहइत कनक दिगुन होय मूल॥
टुटइत नहिं टुट प्रेम अदभुत।
जइसन बढ़ए मृनाल क सूत॥
सबहु मतंगज मोति नहिं मानि।
सकल कंठ नहिं कोइल बानि॥
सकल समय नहि रीतु बसन्त।
सकल पुरुष-नारि नहि गुनवन्त॥
भनइ वियापति सुन बर नारि।
प्रेम क रीत अब बुझह विचारि॥

---

२२. पिछुठए=लोट रहे हैं। फूले=फूल में। कत=किस प्रकार। सत रमनि=सैकड़ों स्त्रियाँ। आने=अन्य। किए=क्या। विष......दाने=विष की ज्वाला को शान्त करने के लिये जल की क्या आवश्यकता। दंशल=काट लिया। काँच=शीशा। समतूल=समान। निचोल=साड़ी। झाँपनि=ढँक लो। रेह=रेखा। चौदिक=चारों ओर।

[२४]

अन्तायें मन्दिर निसि गमाबए
सुख न सूत सँयान।
अखन जतए जाहि निहारए
ताहि ताहि तोहि भान॥
मालति! सफल जीवन तोर।
तोर बिरहे भुअन भमए
भेल मधुकर भोर॥
जातकि केतकि कत न अछए
सबहि रस समान।
सपनहुँ नहि ताहि निहारए
मधु कि करत पान॥
वन उपवन कुंज कुटीरहि
सबहि तोहि निरूप।
तोहि बिनु पुनु पुनु मुरछाए
अइसन प्रेम सरूप॥
मलर नवह खउरभ न सह
गुञरि गीत न गाव।
केतन पापु चिन्ताए आकुल
हरख सबे सोहाव॥
वकर हिरदय जतही रतल
से नामि ततहि जाए।
जइओ जतने बाँधि निरोधिअ
निमन नीर थिराए।

ई रस राय सिवसिंघ जानए
कवि विद्यापति भान।
रानि लखिमा देइ वल्लभ
सकल गुननिधान ॥

[२५]

कर घरु करु मोहे, पारे
देब में अपरुब हारे कन्हैया ॥

सखि सब तेजि चलि गेली।
न जानू कोन पथ भेली कन्हैया ॥

हम न जाएब तुअ पासे।
जाएब औघट घाटे कन्हैया ॥

विद्यापति एहो भाने।
गूजरि भजु भगवाने कन्हैया ॥

---

२४. आसायें = आशा में। सयान = शय्या पर। जखने = जिस समय। जतए = जहाँ। जाहि = जिसको। भान = समझता है। भुअन = लोक, संसार। भम्मए = घूमते हुए। भोर = बेसुध। जातकि = जूही, चमेली। केतकि = केतकी पुष्प। कत = कितना। अछए = हैं। सबहि = सब में। मधू की करत पान = मधु पान करने को कौन कहे। निरूप = तुम्हारे रूप के नहीं हैं! साहर = आम, सहकार। नबह = नवीन। सउरभ = सौरभ, सुगन्धि। गुजरि = गुंजार करके। चेतन··· सोहाव = जीव पाप की चिंता से व्याकुल रहता है, जब प्रसन्नता रहती है तभी सब कुछ अच्छा लगता है। जकर···जाए = जिसका हृदय जिस पर अनुरक्त रहता है वहीं वह लगा भी रहता है। जइओ = यद्यपि। निमन = निम्न, नीचे।

[२६]

कुंज-भवन सयँ निकसलि रे
रोकल गिरधारी।
एकहि नगर बस माधव हे
जनि कर बटमारी॥
छाडु कन्हैया मोर आँचर रे
फाटत नव-सारी।
अपजस होएत जगत भरि हे
जनि करिअ उघारी॥
संग क सखि अगुआइलि रे
हम एकसरि नारी।
दामिनि आए तुलाएल हे
एक राति अँधारी॥
भनहि विद्यापति गाओल रे
सुनु गुनमति नारी।
हरि क संग किछु डर नहि हे
तों ह परम गमारी॥

[२७]

तुअ गुन गौरव सील सोभाव।
सुनि कए चढ़लिहुँ तोहरि नाव॥
हठ न करिअ कान्हु कर मोहि पार
सब तहँ बड़ थिक पर उपकार॥

आइलि सखि सब साथ हमार।
से सब भेलि निकहि बिधि पार॥
हमरा भेल कान्हु तोअरोअ आस
जे अँगिरिअ ता न होइअ उदास॥

भल मन्द जानि करिअ परिनाम।
जस अपजस दुइ रहत ए ठाम॥
हम अबला कत कहब अनेक।
आइति पड़ले बुझिअ विवेक॥

तोहँ पर नागर हम पर नारि।
काँप हृदय तुअ प्रकृति विचारि॥
भनइ विद्यापति गावे।
राजा सिवसिंघ रूपनरायन इ रस सकल से पावे॥

---

२७. तुअ···नाव—आपके गुण गौरव और शील स्वभाव का सहारा लिया है। सब तहँ बड़—सबसे बढ़ कर। थिक—है। भेलि =हुई। निकहि-विधि—अच्छी तरह से। तोअरोअ—तुम्हारा ही। जे—जिसको। अँगिरिअ—स्वीकार किया। मन्द—बुरा आइति···विवेक—अवसर पड़ने पर ही ज्ञान की परीक्षा होती है। पर—अन्य।

(२८)

नाव डोलाव अहीरे
जिवइत न पाओव तीरे
स्वर नीरे लो।
खेवा न लेअए मोले
हँसि हँसि की दहु बोले
जिव डोले लो॥
किए बिके ऐलिहु आपे
बैढ़लिहु मोहि बड़ सापे
मोरे पापे लो।
करिवहुँ पर-उपहासे
परिलिहुँ वन्हि विधि फाँसे
नहि आसे लो॥
न बूझसि अबुझ गोआरी
मजि रहु देव मुरारी
नहि गारी लो।
कवि विद्यापति भाने
नृप सिवसिंह रस जाने
नव कान्हे लो॥

[२९]

हमे दरसइत कतहुँ बेस करु
हमे हेरइत तनु झाँर।
सुरत सिंगारि आज धनि आओलि
परसइत थर थर काँप॥
सुनु हे कान्हु कहिये अवधारि।
सकल काज हम बुझल बुझाएल
न बुझल अन्तर नारि॥
अभिनव काम नाम पुनु सुनइत
रोखत गुन दरसाइ।
अरि सम गंजए मन पुनु रंजए
अपन मनोरथ साइ॥
अन्तर जीउ अधिक करि मानए
बाहर न गत्त तरासे।
कह कवि-सेखर सहज विषय-रत
विदगधि केलि बिलासे॥

[३०]

सुन्दरि चललिहु पहु-घर ना।
चहुँदिसि सखि सब कर धर ना॥
जाइतहु लागु परम डर ना।
जइसे ससि काँप राहु डर ना॥

---

२९. दरसइत = दिखाकर। वेस = सिंगार। हेरइत = देखकर। धनि = स्त्री। परसइत = स्पर्श करते ही। अवधार = निश्चय करके। अन्तर नारि = स्त्री हृदय। रोखत = रोष प्रकट करती है। गुन = गुण, कला। गंजए = गरजती है। रंजए = अनुरक्त होती है। साइ – वह। गत = प्रकट करती है। तरासे = भय से।

जाइतहि हार टुटिए गेल ना।
भूखन वसन मलिन भेल ना॥
रोए रोए काजर दहाए देल ना।
अदकँहि सिंदुर मेटाए देल ना॥
भनइ विद्यापति गाओल ना।
दुख सहि सहि सुख पाओल ना॥

[३१]

कौतुक चललि, भवन कए सजनि गे
संग दस चौदिस नारि।
बिच बिच सोभित सुन्दरि सजनि गे
जेहि पर मिलत मुरारि॥
लाए अभरन कए सोरह सजनि गे
पहिर ललित रँग चीर।
देखि सकल मन उपजल सजनि गे।
कुसिहुक चित नहि थीर॥
नील वसन तन घेरलि सजनि गे
सिर भेल घोघट सारि।
लग लग पहु के चलइत सजनि गे
सकुचल अंग नारि॥
जाति सब ऐल भवन कए सजनि गे
बुझि छाड़लि सब नारि।
[illegible] कर कैन पहु मन कए सजनि गे।
देखए [illegible] कन्हाइ॥

भय वर सनमुख बोलइ सजनि गे
करे लागल सविलास ।
नव रस रीति पिरीति भेल सजनि गे
दुहु मन परम हुलास ॥
विद्यापति कवि गाओल सजनि गे
ई थिक नव रस रीति ।
वयस जुगल समुचित थिक सजनि गे
दुहु मन परम पिरीति ॥

[३२]

प्रथमहि गेलि धनि प्रीतम पास ।
हृदय अधिक भेल लाज, तरास ॥
ठाढ़ि भेलन्हि धनि अंगो न डोले ।
हेम-मूरति सयँ मुखहु न बोले ॥
कर दुहु धए पहु पास बइसाए ।
ससल छुलि धनि वदन सुखाए ॥
मुख हेरि बाकह भमर झाँपि लेल ।
अंकम भरि के कमल मुखि लेल ॥
भनइ विद्यापति इह इ सुमति भलि ।
रस बूझ हिन्दूपति हिन्दूपति ॥

---

२१. चललि=चली। चौदिस—चारों ओर। अभरन—आभरण, भूषण। सोदस—सोलह शृंगार। उतिम—उत्तम। उपजल—उत्पन्न हुआ, चलायमान हुआ। थीर—स्थिर। लेख—लिया। घोंघट—घूँघट। धारि—सँभालकर। सग—समीप। अंकम—हृदय में। भवन कए—घर में कर दिया। घुरि—लौट आई। सभ—सब। भए=होकर। सबिलास—क्रीड़ा। पिरीति—प्रेम। थिक—है। समुचित—ठीक।

[३३]

ए हरि बले यदि परसबि मोय।
तिरि-बध-पातक लागए तोय॥

तुहु रस आगर नागर ढीठ।
हम न बूझिए रस तीत कि मीठ॥

रस परसंग उठओ मझु काँप।
चान हरिनि जनि कएलन्हि झाँप॥

असमय आस न पूरए काम।
भल जन न कर बिरस परिनाम॥

विद्यापति कह बुझलहुँ साँच।
फलहु न मीठ होअए काँच॥

[३४]

हे हरि हे हरि सुनिए स्रवन भरि
अब न बिलास क बेरा।
गगन नखत छल से अबेकत भेल
कोकिल करइछ फेरा॥

---

३२. हराउ—पग । धनि—स्त्री । हेम मूरति—स्वर्ण मूर्ति । बइसाए—बैठाया । कमल छुनि—रूठी हुई थी । दह—दीजिये । हिन्दूपति—राजा शिवसिंह के लिये प्रयुक्त हुआ है ।

३३. हरि—श्रम पूर्वक । परसबि मोय—मुझे स्पर्श करोगे । तिरि—स्त्री । तोय—तुमको । रस आगर—रस जानने में चतुर, श्रेष्ठ । बूझिए—जानती है । मझु—मैं । आस—आशा । काम—कार्य । भल जन...परिनाम—भले लोग ऐसा काम नहीं करते जिसका परिणाम बुरा हो । फलहु...काँच—कच्चा फल पकने पर नहीं मीठा होता ।

चकवा मोर सोर कए चुप भेल
उठिए मलिन भेल चंदा ।
नगर क धेनु डगर कए संचर
कुमुदनि वस मकरंदा ॥
मुख केर प्रान से हो रे मलिन भेल
अवसर भल नहिं, मंदा ।
विद्यापति भन एहो न निक थिक
जग भरि करइछ निंदा ॥

[३५]

सामरि हे झामरि तोर देह ।
की कह के सय लाएल नेह ॥
नींद भरल अछ लोचन तोर ।
कोमल बदन कमल-रुचि चोर ॥
निरस धुसर करु अधर पँवार ।
कोन कुबुधि लुटु मदन-भँडार ॥
कोन कुमति कुच नख-खत देल ।
हाय-हाय सम्भु भगन भए गेल ॥

---

३४. स्रवन=कान । वेरा=समय । छल=थे । से=वे । अवेकत=अव्यक्त, धुँधले । करइछ=करती है । सोर कए—शोर गुल करके । चुप भेल=चुप हो गये । धेनु=गाय । डगर=मार्ग । मकरंद=पराग । केर=का । से हो=वह भी । अवसर भल नहि मंदा=अवसर अच्छा नहीं है, बुरा है । निक थिक=अच्छा है ।

दमन-लता सम तनु सुकुमार ।
फूटल वलय टुटल गृम हार ॥
केस कुसुम वोर, सिर क सिंदूर ।
अलक तिलक हे सेह गेल दूर ॥
भनइ विद्यापति रति-अवसान ।
राजा सिवसिंघ ई रस जान ॥

[३६]

उठ उठ माधव कि सुतसि मंद ।
गहन लाग देखु पुनिम क चंद ॥
हार-रोमावलि जमुना-गङ्ग ।
त्रिवलि-त्रिवेनी विप्र-अनंग ॥
सिंदुर-तिलक बरनि सम भास ।
धूसर मुख-ससि नहि परगास ॥
गहन समय पूजह पँचदान ।
लोअ उगरास देह रतिदान ।
पिक मधुकर पुर कहइत बोल ।
अलपया अमर दान अतोल ॥
विद्यापति कवि रचो रस आन ।
नर सिवसिंघ सब रस क निधान ॥

[७३]

साँझ कुवेरि उगल नव ससधर
भरम विदिव सवितहु ।
कुंडल चक्र तरास नुकाएल
दूर भेल हेरथि राहु ॥
जनु वइससि रे मदन हाथ लाई
तुअ मुख चंगिम अधिक चपल भेल
कति खन धरब नुकाई ॥
रक्तोपल जनि कमल वइसाओल
नील नलिनि दल तहु ।
तिलक कुसुम तहु मझु देखि कहु
भमर आवथि लहु-लहु ॥
पानि-पलव-गात अधर बिम्ब-रत
दसन दाड़िम-निज तोरे ।
कीर दूर भेल पास न आएब
भौंह धनुहि के भोरे ॥

---

३६. कि=क्यों । मद=तुर समय में । पुनिम=पूर्णिमा । हार-रोमावलि=मोती की माला और पेट की रोम पंक्ति । बिप्र-अनंग=कामदेव ही ब्राह्मण है । तरनि=सूर्य । एहन=इस । उगरास=मोक्ष । देह=दो । पुर कहइत बोल=नगर में कहते फिरते हैं । अलपओ···अतोल=अवसर का दिया हुआ दान थोड़ा भी अपार होता है ।

३७. ससधर=चन्द्र (मुख) । सवितहु=सूर्य को भी । तरास=भय । वइससे=बैठती हैं । चंगिम=सुन्दरता । कतिखन=कब तक । नुकाई=छिपा करके । रक्तोपल=लाल कमल।

[३८]

माधव, धनि आयलि कत भाँति ।
प्रेम-हेम परखाओल कसौटी
भादव कुहु-तिथि राति ॥
गगन गरज घन ताहि न गन मन
कुलिस न कर दुख संका
तिमिर-अंजन जलधार धोए जनि
तें उपजावति संका ॥
भाग भुजग सिर कर अभिनय कर
झाँपल फनिमनि दीप ।
जानि सजल घन से देई चुम्बन
तें तुअ मिलन समीप ॥
नारि-रतन धनि नागर व्रजमनि
रस गुन पहिरल हार ।
गोविंद परम मन कहु कविरंजन
सफल भेल अभिसार ॥

[३६]

चन्दा जनि उग आजु क राति ।
पिया के लिखिअ पठाओब पाँति ॥

साओन सयँ हम करब पिरीत ।
जत अभिमत अभिसार क रीत ॥

अथवा राहु बुझाएब हँसी ।
पिबि जनि उगिलह सीतल ससी ॥

कोटि रतन जलधर तोहें लेह ।
आजु क रयनि घन तम कए देह ॥

भनइ विद्यापति सुभ अभिसार ।
भल जन करथि पर क उपकार ॥

[४०]

सखि हे, आज जाएब मोहि ।
घर गुरुजन डर न मानब
वचन चूकब नहि ॥
चानन आनि आनि अंग लेपब ।
भूषन कए गज मोति ।

जल की धारा धो रही है, अर्थात् घने अंधकार में जल-वृष्टि हो रही है। जनि=न। धारा……अभिनय=अंधकार में आती है मानो भागते हुए सर्प के सिर पर नृत्य करती है। कर झाँपल फनिमनि दीप=हाथ से सर्पमणि रूपी दीपक को ढँक लेती है।

३६. पाँति=पत्र। साओन=श्रावण। सयँ=से। पिरीत=प्रेम। जत=जो। अभिमत=मन के अनुसार। पिबि=पी कर। जलधर=बादल। रयनि=रात्रि। देह=दीजिये। पर क=दूसरों का

आएल चाहिअ सुमुखि तोरा।
पिसुन-लोचन भम चकोरा॥

अलक तिलक न कर राधे।
अंग विलेपन करह बाधे॥

कुसुमित कानन कालिन्दि तीर।
तहाँ चलि आओल गोकुल वीर॥

तयँ अनुरागिनि ओ अनुरागी।
दूषन लागत भूषन लागी॥

भनइ विद्यापति सरस कवि।
नृपति-कुल-सरोरुह रवि॥

[४२]

तपन क ताप तपत भेल महि-तल
तातल बालू दहन समान।
चढ़ल मनोरथ भामिनी चलु पथ
ताप तपत नहि जान॥

प्रेम क गति दुरवार।
नविन जौवनि धनि चरन कमल जिनि
तहओ कएल अभिसार॥

---

४१. उपर सारी=ऊपर सँवार लो, चढ़ा लो। कए निवारी=हाथ से मना करो, अर्थात् हाथ से पकड़ लो। अम्बर=वस्त्र। समुद्र-कुसुम=समुद्र का पुष्प, चन्द्र। रभस रसी=आनन्द रस पान करने वाला। अलक-तिलक=महावर और टीका। करह बाधे=बन्द करदो, न करो।

कुल गुन गौरव सति जस अपजस
तृन करि न मानए राधे।
मन मथि मदन महोदधि उछलल
बूड़ल कुल-मरजादे॥
कत कत विघिन जिवल अनुरागिनि
साधल मनमथ तंत।
गुरुजन नयन निवारइत सु-वदनि
पाठ करए मन मंत॥
केलि कलावति कुसुम-सरसि-कुल
सीमल करल पयान।
जत दल मनोरथ पूरल मनमथ
इह कविशेखर भान॥

[५३]

माधव, हरिख सुमुखि समधाने।
तुअ अभिसरि चललि जत सुन्दरि
कामिनि करइ के ध्याने॥
गरिम पयोधर धरनि बारि भरि
नवनि मधा मद सीमा॥
गरुअो पसरि गति तुअ गुन मन गुनि
सम् आदर नहि सीमा॥

देखि भवन भित लिखित भुजँग-पति
तसु मन परम तरासे ।
से सुवदनि कर झपइत फनिमनि
बिहुसि आएलि तुअ पासे ॥
निअ पहु परिहरि अइलि कमल-मुखि
परिहरि निअ कुल गारी ।
तुअ अनुराग मधुर मद मातलि
किछु न गुनलि वर नारी ।
ई रस-रसिक विनोद क विन्दक
कवि विद्यापति गावे ।
काम प्रेम दुहु एक मत भए रहु
कखने की न करावे ॥

[४४]

राहु मेघ भए गरसल सूर ।
पथपरिचय दिवसहि भेल दूर ॥
नहि बरिसए अवसन नहि होए ।
पुर परिजन संचर नहि कोए ॥
चल चल सुन्दरि कर गए साज ।
दिवस समागम सपजत आज ॥

---

४३. अभिसरि = अभिसार करके । कएलि = किया । जत = जितना, जो । आन = दूसरी । पयोधर = मेघ । बारि = जल । रयनि = रात्रि । भीमा = भयंकर । मन गुनि = मन में विचार कर के । तसु = उसके । भवन भित्त = मकान की दीवाल । तरासे = भयभीत । निअ = निज । पहु = प्रभु । अइलि = आई । गारी = निंदा ।

[४६]

नव वृन्दावन नव नव तरुगन
नव नव बिकसित फूल।
नवल वसंत नवल मलयानिल
मातल नव अलि कूल ॥
बिहरइ नवल किसोर ।
कालिंदी-पुलिन कुञ्ज वन सोभन
नव नव प्रेम बिभोर ॥
नवल रसाल-मुकुल-मधु मातल
नव कोकिल कुल गाय।
नवजुवती गन चित उमताअई
नवरस कानन धाय ॥
नव जुवराज नवल वर नागरि
मीलए नव नव भाँति।
निति निति ऐसन नव नव खेलन
विद्यापति मति माति ॥

---

४५ अरुन=सूर्य। अम्बर=आकाश । जाएबा देह=जाने दीजिये। गुपुत=गुप्त। सगर=सम्पूर्ण। रमि=रमण करके। न रह अगोर=घेरे नहीं रहता। के ओ=कोई भी। बेकत=व्यक्त प्रकट। निअ चोरि=अपनी चोरी। धन=सम्पत्ति। गोए=छिपाकर। पर क=दूसरे का। रतन=रत्न। फाब=सुशोभित होता है। चेतन=चतुर। सार= तत्व, सत्य।

४६. मातल=मदोन्मत्त हो गया। कूल=समूह। उमताअई=मदोन्मत्त हो जाता है। माति=उन्मत्त होकर।

[४७]

अभिनव पल्लव वइसक देल ।
धवल कमल फुल पुरहर भेल ॥
करु मकरंद मदाकिनि पानि ।
अरुन असोग दीप दहु आनि ॥
माइ हे आज दिवस पुनमंत ।
करिए चुमाओन राय वसंत ॥
सपुन सुधानिधि दधि भल भेल ।
भमि भमि भमरि हँकरइ देल ॥
टेसु कुसुम सिंदुर सम भास ।
केतकि धूलि बियरहु पटवास ॥
भनइ विद्यापति कवि कंठहार
रस बुझ सिवसिंघ सिव अवतार ॥

[४८]

दखिन पवन वहन्दस दिस रोल ।
से जनि वादी भासा बोल ॥
मनमथ काँ साधन नहि आन ।
निरसाएल से मानिनि-मान ॥

---

४७ वइसक = आसन । फुल = पुष्प । पुरहर = माङ्गलिक कलश । पानि = जल । अरुन असोग = लाल अशोक का पुष्प । दहु आनि = ले आ दिया । पुनमंत = पुण्यवाला । चुमाओन = चुम्बन । राय वसंत = वसंत रूपी वर (दूलह) । सपुन = पूरा, सम्पूर्ण । सुधानिधि = चन्द्रमा । दधि भल भेल = दही का मला ! भिमि भमि = घूम घूम कर । भमरि = भ्रमरी । हँकारइ देल = बुलावा दे आई । धूलि = पराग । पटवास — रेशमी वस्त्र ।

माई हे सीत-वसंत विवाद।
कओन विचारव जय-अवसाद॥
दुहु दिसि मधथ दिवाकर भेल।
दुजवर कोकिल साखी देल॥
नव पल्लव जय पत्रक भाँति।
मधुकर-माला आखर-पाँति॥
बादी तह प्रतिवादी भीत।
सिसिर-बिन्दु हो अन्तर सीत॥
कुंद-कुसुम अनुपम बिकसंत।
सतत जीत वेकताओ वसंत॥
विद्यापति कवि एहो रस भान।
राजा सिव सिंघ एहो रस जान॥

[४६]

अभिनव कोमल सुन्दर पात।
सबारे वने जनि पहिरल रात॥
मलय-पवन डोलए बहु भाँति।
अपन कुसुम रस अपने माति॥
देखि देखि माधव मन हुलसन्त।
विरिदावन भेल वेकत बसंत॥

---

४८ रोल = शब्द करता हुआ। से = वह। जनि = मानो। बादी = विवाद करने वाला। निरसाएल = नीरस बनादिया। अवसाद = पराजय। मधथ = मध्यस्थ। दुजबर = (द्विजवर) पक्षी, ब्राह्मण। जय पत्रक = विजय पत्र। आखर पाँति = अक्षर की पंक्ति। तह = से। भीत = डर गया। सतत = निरन्तर। वेकताओ = प्रकट किया।

कोकिल बोलए साहर भार
मदन पाओल जग नअ अधिकार ॥
पाइक मधुकर कर मधु पान ।
भमि-भमि जोहए मानिनि मान ॥
दिसि दिसि से भमि विपिन निहारि ।
रास बुझावए मुदित मुरारि ॥
भनइ विद्यापति ई रस गाव ।
राधा-माधव अभिनव भाव ॥

[५०]

बाजत द्रिगि द्रिगि धौद्रिम द्रिमिया ।
नटति कलावति माति श्याम सँग
कर करताल प्रबन्धक ध्वनिया ॥
डम डम डंफ डिमिक डिम मादल
रुनु झुनु मंजीर बोल ।
किंकिन रनरनि वलआ कनकनि
निधुवन रास तुमुल उतरोल ॥
वीन रबाव मुरज स्वरमंडल
सा रि ग म प ध नि सा बहु विधि भाव
घटिता घटिता धुनि मृदंग गरजनि
चंचल स्वरमंडल करु राव ॥

---

४६ हमरे = हम । नअ = नव । भमि = [illegible] । रात = लाल । अपने माति = अपने ही में मस्त हैं । साहर = सहकार, आम्र । जग = संसार नव = नया । पाइक = सेवक । जोहए = देखता है, ढूँढता है । रास बुझावए = रास-क्रीड़ा करते हैं ।

स्रम भर गलित लुलित कबरी युत
मालति माल बिथारल मोति।
समय बसंत रास-रस वर्णन
विद्यापति मति छोभित होति॥

[५१]

सखि हे कतहु न देखि मधाइ
काँप सरीर थीर नहि मानस
अवधि नियर भेल आई॥
माधव मास तीथि भयो माधव
अवधि कइए पिआ गेला।
कुच-जुग संभु परसि कर बोलथिन्ह
तें परतिति मोहि मेला॥
मृगमद चानन परिमल कुंकुम
के बोल सीतल चंदा।
पिया बिसलेख अनल जों बसिए
बिपति चिन्हिए भल मंदा॥
भनइ विद्यापति सुन बर जौवति
चित जनु झंखह आजे।
पिय बिसलेख कलेस मेटाएत
बालम बिलसि समाजे॥

---

५० डफ=बाजा। वलआ=वलय, कंकण। तुमुल उतरोल=खूब जोर से हो रही है। राव=रव, स्वर। स्रम भर=परिश्रम के कारण। लुलित=चंचल। कबरीयुत=केशपाश में लगी हुई।

इस पद में वाद्य-यंत्रों की ध्वनि अपूर्व है।

[५२]

फुटल कुसुम नव कुञ्ज कुटिर वन
कोकिल पंचम गावे रे।
मलयानिल हिम सिखर सिधारल
पिया निज देश न आवे रे।
चनन चान तन अधिक उतापय
उपवन अलि उतरोले रे।
समय वसंत कंत रहु दुर देस
जानल विधि प्रतिकूले रे॥
अनमिल नयन नाह मुख निरखइत
तिरपित न भेल नयाने रे।
ई सुख समय सहए एत संकट
अबला कठिन पराने रे॥
दिन दिन खिन तनु हिम कमलिनि जनु
न जानि कि जिव परजंत रे।
विद्यापति कह धिक धिक जीवन
माधव निकरुन कंत रे॥

---

५१ मधाई=माधव। नियर=निकट। माधव मास=वैशाख। तिथि माधव—एकादशी। कइए=करके। बोललन्हि=बोले। ते=तब। के बोल=कौन कहता है। बिसलेख=विश्लेष, वियोग विपति=''मन्दा=विपति में ही अच्छे बुरे की पहिचान होती है।

५२. चनन=चंदन। चान=चन्द्र। उतरोले—गुञ्जार करते हैं। अनमिल नयन=निर्निमेष नेत्र। तिरपित=तृप्त। परजंत=पर्यन्त, अवधि पर्यन्त।

[५३]

सजनी कानुक कहवि बुझाई।
रोपि पेम क बिज, अंकुर मूड़लि
बाँचव कोन उपाई ॥
तेल़-बिन्दु जैसे पानि पसारिए
ऐसन मोर अनुराग।
सिकता जल जैसे छनहि सूखए
तैसन मोर सुहाग ॥
कुल-कामिनि छलौं कुलटा भए गेलौं
तिन कर वचन लोभाई।
अपने कर हम मूँड़ मुड़ाएल
कानु से प्रेम बढ़ाई ॥
चोर रमनि जनि मन मन रोअई
अम्बर वदन छिपाई।
दीपक लोभ सलभ जनि धाएल
से फल़ भुजइत चाई ॥
भनइ विद्यापति इह कलजुग रित
चिन्ता करह न कोई।
अपन करम दोष आपहि भुंजइ
जे जन पर-वस होई ॥

---

५३. रोपि = लग कर। मूड़लि = तोड़ दिया। सिकता = बालू। सुहाग = सौभाग्य। छलौं = थीं। चोर रमनि = चोर की स्त्री। अम्बर = वस्त्र। सलभ = पतंग। जनि = जिमि। भुजइत चाई = भोगना ही चाहिए। भुंजइ = भोगना पड़ता है।

[५४]

के पतिआ लए जाएत रे मोरा पियतम पास ।
हिय नहिं सहए असह दुखरे भेल साओन मास ॥
एकसरि भवन पिया बिनु रे. मोरा रहलो न जाय ।
सखि अनकर दुख दारुन रे, जग के पतिआय ॥
मोर मन हरि हरि लय गेल रे, अपनो मन गेल ।
गोकुल तजि मधुपुर बस रे, कत अपजस लेल ॥
विद्यापति कवि गाओल रे, धनि धरु पिय आस ।
आओत तोर मनभावन रे, एहि कातिक मास ॥

[५५]

सजनी, के कह आओब मधाई ।
विरह–पयोधि पार किए पाओब
मझु मन नहि पतिआई ॥
एखन-तखन करि दिवस गमाओल,
दिवस-दिवस करि मासा ॥
मास-मास करि बरस गमाओल,
छोड़लूँ जीवन आसा ॥
बरस-बरस करि समय गमाओल,
खोयलूँ कानुक आसे ।
हिमकर-किरन नलिन जदि जारब,
कि करब माधव मासे ॥

---

५४. पतिअः = चिट्ठी । लए जाएत = ले जायेगा । एक सरि = अकेली । अनकर = अन्य का, दूसरे का । हरि लय गेल = चुरा ले गये । अपनी = स्वतः ।

अंकुर तपन-ताप जदि जारब,
कि करब वारिद मेहे।
इह नव-जौवन विरह गमाओब,
कि करब से पिया गेहे॥
भनइ विद्यापति सुन वरजौवति,
अब नहि होह निरासे।
से ब्रज-नन्दन हृदय अनन्दन,
झटित मिलब तुअ पासे॥

[५६]

आनन भेल विषम सर रे
भूषन भेल भारी।
सपनहुँ हरि नहि आएल रे।
गोकुल गिरिधारी॥
एकसरि ठाढ़ि कदम तर रे
पथ हेरथि मुरारी।
हरि बिनु हृदय दगध भेल रे
झामर भेल सारी॥
जाह जाह तोहें ऊधो हे
तोहें मधुपुर जाहे।
चन्द्र बदनि नहिं जीवति रे,
बध लागत काहे॥

---

५८. आओब = आवेंगे। एखन-तखन = इधर उधर। खोयलूँ = छोड़ दिया। कानुक = श्रीकृष्ण का। माधव मासे = वसंत ऋतु। हिम कर = चंद्रमा। तपन = सूर्य। मेहे = जल। होइ = होओ। झटित = शीघ्र ही।

भनइ विद्यापति तन मन रे,
सुनु गुन मति नागी।
आजु आओत हरि गोकुल रे,
पथ चल झट झारी ॥

[५७]

सरदक सरधर मुख रुचि सोंपलक
हरिन के लोचन लीला।
केसपास लए चमरि के सोंपलक,
पाए मनोभव लीला ॥
माधव, जानल न जीवति राही।
जतवा जकर लेले छलि सुन्दरि,
से सब सोंपलक ताही ॥
दसन-दसा दालिम के सोंपलक,
वन्धु अधर रुचि देली।
देह, दसा सोदामिनि सोंपलक,
काजर सनि सखि भेली।
भोंहक-भंग अनंग-चाप दिहु,
कोकिल के दिहु वानी।
केवल देह नेह अछ लओले
एतवा अएलहुँ जानी ॥

---

५६. चानन = चन्दन। एकसार = एकान्त। हेरथि = देख रही है। झामर = काला, मलीन। बध = बध करने का दोष, पातक। काहे = किसको। झारी = बिलकुल तैयार होकर।

भनइ विद्यापति सुनु वरजौवति,
चित झंखह जनु आने।
राजा सिव सिंघ रूपनरायन
लखिमा देइ रमाने॥

[५८]

अनुखन माधव माधव सुमिरत
सुन्दरि भेलि मधाई।
ओ निज भाव सुभावहि बिसरल
अपने गुन लुबुधाई॥
माधव अपरुब तोहर सिनेह।
अपने विरह अपन तनु जर जर
जियइत भेलि सन्देह।
भोरहि सहचरि कातर दिठि हेरि
छल छल लोचन पानि।
अनुखन राधा राधा रटइत
आधा आधा बानि॥
राधा सयँ जब पुनतहि माधव
माधव सयँ जब राधा।

---

५७. सरदक = शरद् ऋतु का। ससधर = चन्द्रमा। मुख रुचि = मुख की कान्ति। सौंपलक = समर्पित कर दिया। लोचन लीला = नेत्र का कटाक्ष। चमरि = चमरी गाय। पाए मनोभव पीला = कामदेव की पीड़ा को प्राप्त करके। जतबा = जितना। जकर = जिसका। लेले छलि = लिये हुए थी। दालिम = अनार। बन्धु = बन्धूक पुष्प। काजर सीन = काजल के समान (काले)। अछ = है। एतबा = इस प्रकार। झंखह = दुःखी होओ। आने = अन्य।

दारुन प्रेम तवहि नहि टूटल
बाढ़त विरहक बाधा ॥
दुहु दिसि दारु-दहन जैसे दगधई
आकुल कीट परान ।
ऐसन वल्लभ हेरि सुधामुखि
कवि विद्यापति भान ॥

[५९]

सरस वसन्त समय भल पाओलि
दछिन पवन वहु धीरे ।
सपनहुँ रूप वचन एक भाखिए
मुख सों दुरि करु चीरे ॥
तोहर वदन सम चान होअथि नहिं
जइओ जतन विहि देला ।
कए वेरि काटि बनाओल नव कय
तइओ तुलित नहि भेला ॥
लोचन-तूल कमल नहिं भए सक
से जग के नहि जाने ।
से फेरि जाए लुकाएल जल भए
पंकज निज अपमाने ॥

---

५८. इस पद में विरहाधिक्य के कारण प्रेम की पराकाष्ठा देखिये । श्रीराधा जी माधव का ध्यान करती करती माधव मय हो गई हैं और फिर माधव होकर राधा राधा चिल्लाती हैं । राधा रूप में भी विरह और माधव रूप में भी विरह बना रहा है ।

५९. सपनहुँ = स्वप्न में । रूप = सुन्दर पुरुष । तुलित = समान । तूल = समान । जल भए = जल में ।

भनइ विद्यापति सुनु बरजौवति
ई सभ लछमी समाने।
राजा सिवसिंघ रूपनरायन
लखिमा देइ पति भाने॥

[६०]

मोरा रे अँगनमा चनन केरि गछिआ
ताहि चढ़ि कुररय काग रे।
सोने चोंच बाँधि देव तोयँ बायस
जओं पिया आओत आज रे।
गावह सखि सब झूमर लोरी
मयन-अराधन जाऊँ रे।
चओदिस चम्पा मओली फूललि
चान इजोरिया राति रे।
कइसे कए मोयँ मयन अराधब
होइति बड़ि रति-साति रे॥
विद्यापति कवि गावए तोहर
पहु अछ गुनक निधान रे।
राओ भोगीसर सबगुन आगर
पदमा देइ रमान रे।

---

६०. अँगनमा = आँगन में। चनन = चन्दन। गछिआ = पेड़। कुररय = बोलता है। बायस = काग। चओदिस = चारों ओर। मओली = चमेली। मोयँ = मैं। रति-साति = रति से उत्पन्न शाँति, पीड़ा। पहु = प्रभु। अछ = हैं। गुनक = गुण का।